Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय भाषाओं का उत्कृष्ट साहित्य हिन्दी में उपलब्ध

ट्रस्ट की "आदान-प्रदान" पुस्तक माला के अंतर्गत प्रमुख भारतीय भाषाओं की साहित्यिक कृतियां सस्ते दामों पर पाठकों को उपलब्ध कराई जाती हैं.

"आदान-प्रदान" पुस्तक माला के अंतर्गत प्रकाशित चुनी हुई पुस्तकें.

सोरठ तेरा बहता पानी	झबेर चन्द्र मेधार्णी	6.25
पूर्ण कुंभ	रानी चंद	11.25
सेतु	द्विवेंदल विशालाक्षी	6.00
यात्रा का अंत	नील पद्मनाभन	7.00
आखिर जो बचा	बुच्ची बाबू	8.50
अनादि अनंत	श्रीरंग	12.25
पुदुमैइपित्तन की कहानियां	एम. पी. सोमसुंदरम (संपा.)	6.75
किनो ग्वाले की गली	एस. के. घोष	8.25
नवन्न	विजन भट्टाचार्य	7.25
मुक्ति	शांतिनाथ देसाई	11.75
वनहंसी श्वेतपद्मा	मनोरंजन दास एवं प्राणबंधुकर	8.00
पुराना लखनऊ	अब्दुल हलीम "शरर"	16.25

इनके अतिरिक्त सभी आयु-वर्गों के लिए सभी भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी में अनेक ट्रस्ट की पुस्तकें.

प्राप्ति स्थान

सभी प्रमुख पुस्तक-विक्रेताओं तथा ट्रस्ट के निम्नलिखित पुस्तक-केंद्रों से——

ए-4 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016
67/2, महात्मा गांधी मार्ग, कलकत्ता-9
सीटी सेंट्रल लाइब्रेरी बिल्डिंग, अशोक नगर, हैदराबाद-20
गवर्नमेंट हायर सेकेंडरी स्कूल, टाउन हाल, अमृतसर
जबलपुर यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, जबलपुर-482001
यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, विश्वभारती युनिवर्सिटी, शांति निकेतन (प. बंगाल)

नेशनल बुक ट्रस्ट, इन्डिया

ए-5, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की बचत एवं सुविधा के लिए

हमें अक्सर पाठकों से शिकायती-पत्र मिलते हैं कि उन्हें 'सारिका' अपने बुक स्टॉल पर मिल नहीं पाती, उनके पहुंचने से पहले ही सारी प्रतियां बिक जाती हैं. पाठकों की सुविधा के लिए हम उन्हें सलाह देंगे कि वे अपना शुल्क आज ही ड्राफ्ट/मनीआर्डर के रूप में नीचे दिये गये कूपन के साथ हमें भिजवा दें ताकि उन्हें 'सारिका' डाक से नियमित भिजवायी जा सके.

शुल्क की रियायती दरें :—

वार्षिक : 80 रुपये

अर्धवार्षिक : 41 रुपये

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम ....

पता......................

....

....

....

हस्ताक्षर ....

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें :
प्रसार अधिकारी,
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुर शाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

अगला अंक

देश की एकता को अखंड बनाये रखने के लिए हमें कौन-कौन से हथियार इस्तेमाल करने होंगे...?

पढ़िए, आदमी को आदमी की तरह हिल-मिलकर जीने के लिए कारगर कदम सुझाती विविध रचनाएं

उषा प्रियवंदा, गुणवंती त्रिवेदी (गुजराती), भगवती शरण मिश्र, बाला दुबे, मोतीलाल जोतवाणी (सिंधी), एंडरसन (अमरीकी) की कहानियां

- **आग**

  —**'किसी देश के किसी शहर में'** शीर्षक-योजना के अंतर्गत **रमेश उपाध्याय** की अगली कहानी
- **युवालेखन कहानी प्रतियोगिता**

  —**नरेंद्र निर्मोही** की कहानी—**'तुरुप चाल'**
- **आते हुए लोग**

  —**यश गोयल** की कहानी—**'उतरा हुआ कोट'**
- **गम रोजगार के : ममता कालिया** के उपन्यास का दूसरा अंश
- **नपुंसक : मधुकर सिंह** की उपन्यासिका की अगली किस्त
- **पीढ़ियां : आमने-सामने**

  —अमरकांत, मार्कंडेय, मधुकर गंगाधर, ममता कालिया एवं बटरोही की अंतरंग बातचीत

सारिका

16 जुलाई, 1984

- तुलसीदास चंदन घिसैं!
- मथुरादास की डायरी
- भरतमुनि के वंशधर
- पखवारे की पुस्तकें
- तस्वीर बोलती है आदि सभी स्थायी स्तंभों सहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : २४; अंक : ३६०; १ से १५ जुलाई, १९८४

कहानियां

10. गम रोजगार के : ममता कालिया
16. देवाशिष सेन गुप्ता के जीवन का एक दिन : जितेंद्र भाटिया
26. नपुंसक : मधुकर सिंह
35. मरम्मतवाली (फ्रांसीसी) : मोपासां
41. मिट्टी : रमेश उपाध्याय
46. नरमेघ (तेलुगू) : पंतुल जोगाराव
57. सीमांत : क्षितिज शर्मा
63. दुर्वासा की मृत्यु : जसविंदर यशी

व्यंग्य-रचनाएं

31. उनकी एकल प्रदर्शनी में : लतीफ घोंघी
66. हमने लिखना क्यों छोड़ा : इब्ने इंशा

लघु रचनाएं

12. परीक्षण : मंगल बादल
13. बड़े लोग : रमेश आनंद
18. प्रजापति की फरियाद : कमल शुक्ल
28. घनत्व : स. सि. सृंजय
37. ग़ज़ल : अब्दुर्रहीम
48. सरसती माता की जै जै : शंकरदयाल सिंह
59. ग़ज़ल : शबनम गोरखपुरी
61. ग़ज़ल : राजेंद्र चांद
65. पूर्व नियोजित : हसन जमाल

साक्षात्कार

50. 'हिंदी में जिम्मेदार आलोचकों की संख्या कम ही है'—उषा प्रियंवदा से अवधनारायण मुद्गल की लंबी बातचीत

अन्य आकर्षण

44. चचा प्रभाकर—जैसा देखा, जैसा पढ़ा : श्रीकांत गोयलीय

स्थायी-स्तंभ

7. आपकी बात
22. तुलसीदास चंदन घिसैं : हरिशंकर परसाई
25. ...और भुलाये न बने...
33. मथुरादास की डायरी : मथुरादास
39. तस्वीर बोलती है : रवि कपूर
67. पखवारे की पुस्तकें
70. भरतमुनि के वंशधर : सूत्रधार
74. हलचल

सहायक संपादक
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
सज्जाकार
सुमीता

संपादकीय पता :
सारिका,
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

आवरण—कलाकृति : अनिल करंजई
पारदर्शी : करुणानिधान

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका
सर्वभाषा कहानी एवं लघुकथा प्रतियोगिता: 1984

पुरस्कार योजनाएं

कहानी प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार : 1500 रुपये
द्वितीय पुरस्कार : 1000 रुपये
तृतीय पुरस्कार : 750 रुपये
पांच सम्मान पुरस्कार : 400 रुपये प्रत्येक

लघुकथा प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार : 200 रुपये
द्वितीय पुरस्कार : 150 रुपये
तृतीय पुरस्कार : 125 रुपये
पांच सम्मान पुरस्कार : 100 रुपये प्रत्येक

सारिका कहानी मंच प्रतियोगिता: 1984

प्रथम पुरस्कार : 500 रुपये
द्वितीय पुरस्कार : 400 रुपये
तृतीय पुरस्कार : 300 रुपये
दस प्रोत्साहन पुरस्कार : 200 रुपये प्रत्येक

▣ विशेष

ारिका कहानी मंच के सदस्य अपनी रचनाएं सीधे में न भेजकर अपने महाविद्यालय/विश्वविद्यालय स्थापित मंच के संयोजक और संरक्षक के माध्यम भिजवाएं, जिसमें प्रमाणित किया गया हो कि चनाकार सारिका कहानी मंच का सदस्य एवं स्थान का छात्र है. शेष नियम अन्य प्रतियोगिताओं ी भांति ही लागू होंगे. छात्र-छात्राएं किसी भी कार की अन्य जानकारी के लिए अध्यक्ष, सारिका हानी मंच, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 े पते पर पत्र-व्यवहार कर सकते हैं. वे अपनी चना पर घर और संस्थान दोनों के पते लिखें.

नियमावली

1. इस प्रतियोगिता में हिंदी एवं सभी भारतीय भाषाओं के कथाकार समान रूप से भाग ले सकते हैं, लेकिन रचनाएं हमारे पास हिंदी में ही भेजी जानी चाहिए.
2. कहानी की शब्द-संख्या पांच हजार शब्दों से अधिक तथा लघुकथाओं की पांच सौ शब्दों से अधिक न हो तो यह सुविधाजनक होगा.
3. पुरस्कृत कहानियों, लघुकथाओं के प्रथम प्रकाशन का अधिकार हर प्रकार से 'सारिका' के पास सुरक्षित रहेगा. पुरस्कारों की घोषणा संभवतः अप्रैल, 1985 तक कर दी जायेगी.
4. कहानी/लघुकथा मौलिक एवं हिंदी तथा किसी भी अन्य भाषा में अप्रकाशित एवं अप्रसारित होनी चाहिए.
5. कहानी के साथ अपनी हस्तलिपि में यह प्रमाणपत्र भी भेजें—"मैं घोषित करता/करती हूं कि मेरी कहानी/लघुकथा (रचना का शीर्षक) मौलिक है एवं किसी भी भाषा में प्रकाशित अथवा प्रसारित नहीं हुई है. प्रतियोगिता का निर्णय घोषित होने तक इसे कहीं भी प्रकाशन अथवा प्रसारण के लिए नहीं भेजा जायेगा. मैं प्रतियोगिता के सभी नियमों से पूर्णतः सहमत हूं.
—नाम, हस्ताक्षर एवं पता
6. प्रतियोगिता में भेजी गयी रचनाएं लौटाना संभव नहीं होगा, अतः रचना की प्रति अपने पास सुरक्षित रखें.
7. रचना के साथ चित्र एवं परिचय तथा पत्र आदि न भेजें. इस विषय में निर्णय होने तक किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार भी न करें.
8. अपनी रचनाएं आप डाक से भेजने के अलावा 'सारिका कार्यालय' में 30 नवंबर, 1984 तक स्वयं आकर भी दे सकते हैं.
9. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम एवं सर्वमान्य होगा.
10. इस प्रतियोगिता में बेनेट कोलमैन एंड कंपनी के कर्मचारी एवं उनके निकट संबंधी भाग नहीं ले सकते.
11. रचना भेजते हुए लिफाफे पर पते की जगह नीचे प्रकाशित कूपन अवश्य चिपकाएं. आप जिस प्रतियोगिता में भाग ले रहे/रही हों, उसे छोड़कर कूपन पर बाकी शीर्षक काट दें. अन्यथा रचना प्रतियोगिता में शामिल नहीं की जायेगी.

▣ **अंतिम तिथि : 30 नवंबर, 84**

सारिका
सर्वभाषा कहानी/लघुकथा प्रतियोगिता
10, दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

आलोचना के नये सूत्र

● ब्रजमोहन सिंह, नयी दिल्ली

सारिका (1-15 मई, अंक : 356) में **नंदकिशोर मित्तल** का **'खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे'** जैसा पत्र **नामवरजी** के साक्षात्कार (1-15जनवरी, 1984) के संदर्भ में पढ़ा. अफसोस है कि **'सारिका'** के संपादकीय सहयोगी जो साक्षात्कार से संबद्ध थे, नामवरजी की जातिवादी आलोचना के सूत्रों को पकड़ नहीं सके. भला हो मित्तलजी का जिन्होंने आलोचना की ऐतिहासिक परंपरा में नये सूत्र जोड़े हैं और 'जातिवादी आलोचना' की बुनियाद कायम की है. इन सूत्रों की खोजबीन की जानी चाहिए. मित्तलजी के पत्र को पढ़कर मुझे क्षोभ ही नहीं रोना भी आया. हिंदी साहित्य की ऐसी स्थिति है कि कोई आलोचक अपने भाई का नाम भी नहीं ले सकता. जब दूसरों का नाम लेता है, तब भी उसे गाली मिलती है. नामवरजी ने जब **निर्मल वर्मा** की **'परिंदा'** कहानी की प्रशंसा की थी और मुक्त स्वीकृति दी तब गाली देने वाले लोग भी थे. मित्तलजी जैसे प्रतिक्रियावादियों को छोड़ दीजिए, मार्क्सवादियों तक ने नहीं छोड़ा. उस वक्त निर्मल वर्मा किस जाति के थे. 'विशेष' **विजय मोहन सिंह** का नाम मित्तलजी को अखरता है क्योंकि वह आलोचक नामवरजी की जाति का है. एक जातिवादी को ही आलोचना में जातिवाद की गंध मिल सकती है. जातिवाद का यह आरोप निरा हथकंडा भी हो सकता है. मित्तलजी ने यह नहीं दिखाया कि विशेष विजय मोहन सिंह का योगदान हिंदी कहानी के क्षेत्र में कूड़ा-करकट का भी नहीं है. लेकिन 'जातिवादी' प्रवृत्ति को खोजकर मित्तलजी हिंदी आलोचना की परंपरा में ऐतिहासिक योगदान देते हुए अपना प्रतिक्रियावादी मुखौटा नहीं छुपा पायेंगे. नामवरजी के मुंह खोलने से मित्तलजी जैसे लोगों का चेहरा अपने आप बेनकाब होने लगता है. आलोचना के टूटे दांत दिखाई पड़ने लगते हैं और असफलता और खीज की टपकती लार. मित्तलजी को यह भी खोज करनी चाहिए कि **निर्मल वर्मा, अमरकांत** या **अवधनारायण मुद्गल** के साथ भी नामवरजी का कोई जातिवादी रिश्ता है. मित्तलजी आलोचना की अंतर्वस्तु की निंदा नहीं करते, नीयत पर शक करते हैं जो उनकी सामर्थ्य-हीनता को ही दर्शाता है. मित्तलजी सारे हिंदी जगत के लिए बधाई के पात्र होते अगर वे नामवरजी के अंतर्विरोधों और सीमाओं का उद्घाटन करते.

वीर राजा को क्यों छाप देते हैं

● अशोक गुप्ता, फरीदाबाद

'जेबकतरे' पढ़ी. आखिर आप **बीर राजा** की कहानियां क्यों छाप देते हैं? पढ़कर मन तितर-बितर तो हो ही जाता है, अन्य कहानियों के छपे हुए शब्द भी धुंधलाने लगते हैं. वैसे मैं इस शख्स को अच्छी तरह जानता हूं. पचासा छू रहा होगा, लेकिन अब भी जरा-सा जोश में आ जाये तो उसके हाथ में कांच का गिलास चिटखकर 'देश' हो जाता है. उसके पास होना, उसके पास होने से ज्यादा अपने पास होना लगता है. भला यह भी कोई आदमी हुआ? आप चाहें तो मेरा यह खत बेधड़क छाप दें. उसकी आंखों में है ही क्या सिवाय एक आदमकद ईमान के? इस हौवे से तो आदमी का डर न जाने कब का निकल चुका है. असली डर तो उसकी कहानियों के सच से हैं.

. . . और कभी-कभी लापरवाह सरसरी निगाह भी अपना काम दिखा जाती है. बकौल **सैन्नी अशेष** के **वात्स्यायनजी** ने कहा, "हिंदी के सभी प्रकाशक अनपढ़ और संकीर्ण बुद्धि के हैं, जो अपवाद हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार." क्या हुआ, कि मैं पढ़ गया ". . . और जो अपवाद हैं, उन्हें तो दूर से ही नमस्कार."

यह बात न सही अज्ञेयजी की, लेकिन कहीं यह भी तो सच. . . !

सारिका के मुखपृष्ठों में सारिका की अस्मिता वापस लौट रही है.

सही धरती की पहचान

● अर्जुन दास मजबूर, कश्मीर

इस्मत चुगताई की अनूदित कहानी **'मुट्ठी मालिश'** और **देशबंधु डोगरा 'नूतन'** की कहानी **'संस्कार'** को भारतीय समाज के उस वर्ग की प्रतिनिधि कहानियां कहना चाहिए जो आज तक नजरअंदाज किया जाता रहा है. इस प्रकार की कहानियां छापकर आप पाठकों को खयाली दुनिया से निकालकर वास्तविकता की धरती पर ला खड़ा करते हैं. दोनों कहानियों की शैली आम कहानियों से कुछ हटकर लगी.

परसाई बनाम तुलसी बनाम कबीर

● आनंद कुरेशी, डूंगरपुर

इस्मत चुगताई की कहानी **'मुट्ठी मालिश'** और **मधुर नज्मी** की **ग़ज़ल** के लिये बधाई स्वीकार कीजियेगा. **'तुलसीदास चंदन घिसैं'** स्तंभ में **हरिशंकर परसाई** ने तुलसीदास को ही घिस्सी मार दी और चतुराई से अपने सभी पुरस्कार और सम्मानों का बखान कर दिया. बात कुछ जमी नहीं. परसाईजी जब **'सारिका'** में ही **'कबीरा खड़ा बाजार में'** लिखा करते थे, तब सारिका की शुरुआत ही मैं उसी स्तंभ से करता था. आज सबसे बाद में ही परसाईजी के स्तंभ को पढ़ पाता हूं. हो सकता है उस समय मेरी आयु कम थी सो कबीर अच्छे लगे, आज अड़तीस साल पार करने के बाद भी तुलसी और परसाईजी की सांठ-गांठ नहीं समझ पा रहा हूं. आज भी मेरे दिमाग में लट्ठबाज फकीर कबीर समाया हुआ है.

पुरुष लेखिका/महिला लेखक

● श्रीनिवास उदगाता, बलांगीर

सारिका (16-31 मई, अंक : 357) का मुखपृष्ठ देखकर मन झूम उठा.

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अंत में निराशा ही हाथ लगी. **पीढ़ियां : आमने-सामने** में आखिर किन आयामों पर आलोचना हुई जिसे लेखक और पाठक दोनों के लिए उपयोगी कहें. अलबत्ता एक बात की सूचना मिली की हिंदी में 'महिला लेखिका' और 'पुरुष लेखक' हैं. बहस में इन विशेषणों के बेशुमार प्रयोग के कारण सोच रहा हूं 'पुरुष लेखिका' और 'महिला लेखक' भी होंगे.

वीमेन राइटर्स का हौवा

● **बांकेबिहारी भटनागर, नयी दिल्ली**

कहानी-लेखन संबंधी **बहस** में लेखिका के लिए 'महिला लेखिका' या नारी लेखिका (डबल स्त्रीलिंग) और 'लेखक' के लिए 'पुरुष लेखक' (डबल पुलिंग) शब्दों का प्रयोग किया गया है. लगता है बहस में भाग लेनेवाले प्रतिष्ठित साहित्यकारों के मस्तिष्क पर अंग्रेजी का 'वीमेन राइटर्स' शब्द छाया हुआ था और उसे हिंदी का रूप देते समय वे अंग्रेजी और हिंदी की पृथक-पृथक प्रयोग-शैली और शब्द सामर्थ्य को भूल गये. अंग्रेजी की अंधदासता का इससे अच्छा दृष्टांत और क्या मिल सकता है?

नामवरजी और महिलाएं

● **कृष्णा अग्निहोत्री, खंडवा**

महिला लेखन पर कई विद्वानों की चर्चा पढ़ी. चर्चा कुल मिलाकर प्रभावहीन ही है. इतने अच्छे चर्चित व्यक्तियों के प्रश्न-उत्तर पढ़कर मुझे भी पत्रकारिता याद हो आयी जब 'नयी कहानी' में कुछ लोग एक-दूसरे की प्रशंसा करके चर्चित होते थे. आश्चर्य यह हुआ कि गुरुदेव **नामवर सिंह** जी ने ऐसी गुटबाजी व प्रशंसा हेतु उन सबकी आलोचना ही की थी और इस परिचर्चा में स्वयं ही ऐसी चर्चा के शिकार हो गये.

यह सच है कि मार्च सात व आठ की जयपुर प्रगतिशील संघ की साहित्यिक गोष्ठी में मैंने कहा था कि अपने-आपको प्रगतिशील कहनेवाले समीक्षक महिलाओं के विषय में लंबी चुप्पी क्यों धारण किये हैं? मैंने यह भी कहा था कि पूज्य नामवर सिंह यदि इस स्वातंत्र्योत्तर महिला लेखन की प्रशंसा नहीं कर सकते तो गालियां ही दे दें. हम उसे ही मार्गदर्शन मानेंगे.

लगता है मेरी बात अनजाने या अनायास ही नामवरजी ने सुन ली और शायद बहुत अधिक आक्रोश में बौखलाकर बिना चिंतन के ही वे चीख पड़े—**कृष्णा अग्निहोत्री** तो लेखिका ही नहीं. . . इतने बड़े विद्वान, मेरे गुरु को क्या यह स्मरण करवाने का समय आ गया है कि महिलाओं के प्रति वे सही, तटस्थ दृष्टिकोण बनायें. पक्षपाती रवैया उन्हें अब तो त्याग देना चाहिये.

उषाजी ने अमरीका में क्या पाया

● **सुरेंद्र प्रसाद सिंह, बंबई**

पीढ़ियां : आमने-सामने शीर्षक के अंतर्गत **'महिला कथा-लेखन और कहानी'** पर **उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, राजेंद्र यादव, मृणाल पांडे** और **डॉ. नामवर सिंह** की तथाकथित सारगर्भित विचारोत्तेजक बातचीत के दौरान महिला-लेखन में नारी गंध, लेखिकाओं के महिला होने के फायदे, अपनी कहानियों में लेखिकाओं द्वारा पुरुषों को गुदगुदाने-रिझाने की प्रवृत्ति, समालोचकों द्वारा गद्य-लेखन के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार जैसी बातों का विशेष उल्लेख किया गया. बातचीत के दरमियान प्रियंवदाजी बार-बार 'इंटरप्ट' करके हम पाठकों को दयापूर्वक यह बताती हैं कि वे अमरीका में रही हैं. वहा 'सेक्सुअल रिवोल्यूशन' गुजरा, जो शुरू हुआ और खत्म हुआ. . . फिर वे नारी-शरीर की 'आइडेंटिटी' के बारे में 'अवेयर' हो गयीं. . . पुरुष-शरीर के प्रति भी सजगता आयी. . . आदि.

सारिका कहानी मंच

सारिका अंक : 359 (16-30 जून, 1984) 'हलचल' स्तंभ के पृष्ठ 73 पर प्रकाशित 'सारिका कहानी मंच' की विचार गोष्ठी राजेंद्र महाविद्यालय, छपरा (बिहार) ने आयोजित की थी और रपट भेजी श्री डी. एन. पटेल 'सायल' ने, जिनका नाम छपने से रह गया था.

—संपादक

खोये हुए कथाकारों की तलाश

● **सुधीश पचौरी, नयी दिल्ली**

आखिरकार आप **सारिका** को देह-व्यापार से साहित्य-व्यापार की ओर खींच ही लाये. इसके लिए जो रस्सी आपने चुनी उसके लिए इस वक्त समकालीन कथाकार अवश्य बधाइयों के तार भेज रहे होंगे.

अब रस्सी तो रस्सी है. कहीं छप्पर बांधती है तो कहीं गले को. कहीं हाथ बांधती है तो कहीं किताबों को. कहीं पुल बांधती है तो कहीं गाड़ी खींचती है. कहीं चाबुक है तो कहीं माला.

एक जमाने में **नामवरजी** ने **मार्कंडेय** की मदद से जो रस्सी बंटी उससे उन्होंने नयी कहानी के छप्पर को बांधा. अ-कहानी वगैरह की आंधी में वह छान जब उड़ी तो बचानेवाले नहीं मिले. तब से अब तक वह आश्रम वीरान पड़ा है. न पुराने का अब तक किसी ने जीर्णोद्धार किया और न नया ही बना. दरअसल पटसन की रस्सी विदेशों में निर्यात के लिए मुकर्रिर हो गयी और उसकी जगह एक्रिलिक यार्न ने ले ली जिस पर बहुराष्ट्रीय निगमों का इजारा है. यह थोड़ी चमकदार और देर तक चलने वाली रस्सी होती है.

अब आप चाहते हैं कि इससे कहानी का छप्पर फिर से बांधा जाये. इसके लिए कुछ पीढ़ियों को पीढ़ी पर बिठाकर आपने मूंज की जगह एक्रिलिक दे दिया. अब जो रस्सी बन रही है उसमें हरेक के हाथ की घुमेड़ें स्पष्ट नजर आती हैं. मगर रस्सी के सिरे हैं कि खुले के खुले ही रह जा रहे हैं. जो फंदे **विजय मोहन** ने डाले वे भी **असगर वजाहत** की उंगली न बांध सके. हां, **काशीनाथ** की गर्दन जरूर भाईचारे में कई बार फंसी. मगर फिर भी रस्सी सीधी खड़ी नहीं हो सकी.

कुछ साल पहले नामवरजी ने अवश्य हिंदी कथा साहित्य के पच्चीस वर्षों की गांठें लगाते हुए इसे खड़ा करने की कोशिश की थी. मगर जब उससे नीचे उतरकर आये तो हमारे भाई काशीनाथ, सहित सभी लोग भौंचक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे. और लोगों का क्या हुआ? मसलन ज्ञानरंजन, दूधनाथ, गंगाप्रसाद विमल, इसराइल, रवींद्र कालिया, इब्राहीम शरीफ आदि कभी लौटकर नहीं आये. अमृतराय ने तो यहां तक कहा कि इन लोगों को उन्होंने जाते हुए तो देखा था, आते हुए किसी नहीं देखा. यह कथाकारों के गायब हो जाने की घटना थी जो नामवरजी की तानी हुई रस्सी पर हुई थी.

अब जब वे सिर्फ मंत्रोच्चार से रस्सी साधने की कला में सिद्ध हो गये हैं तो आप फिर उनके हाथ में रस्सी थमाये दे रहे हैं. देखिए ना, इसी रस्सी मंत्रोच्चारण में जो उत्पादन, मारण, वशीकरण उन्होंने पेले तो क्या हालत हुई? पूरी बातचीत में अपने जमाने के ही कुछ नाम बार-बार चढ़ते-उतरते रहे. इतने वर्षों में सिर्फ मनोहर भाई का रियाज नजर आया. नामवरजी ने इन्हें लाइन में ले लिया है, देखें वे कहां तक जाकर वापस आते हैं?

यह तो अच्छा ही हुआ कि राजेंद्र यादव के उकसाने पर नामवरजी ने उदय और संजीव की एकाध कहानी पढ़कर नब्ज टटोल ली वरना अगर ये चढ़ गये होते तो पहले ही राउंड में गायब हो जाते.

दरअसल, अब इस रस्साकशी की पोल नये कथाकारों के सामने खुल चुकी है. वे किसी भी लालच में आचार्य की रस्सी पर चढ़ने को तैयार नहीं. उधर आचार्य को भी नये माल की मौलिकता समझ में नहीं आ रही. राजनीति से तो उन्हें वैसी ही चिढ़ पहले भी थी जैसी अज्ञेय को है. अब नये कहानीकारों की कहानियों में प्राय: वही-वही विषय बन रही है. तो और भी आफत हो गयी है. राजनीतिक संदर्भों की रचना पर राय देंगे तो साफ-साफ पकड़ में आ जायेंगे. अत: राजनीति की बड़ी-बड़ी बातें करने वालों को पास ही न फटकने दो, यही नीति उचित है. अत: रह जाते हैं वेजीटेरियन मानवीय संबंध. उन्हें आप किसी में भी देख सकते हैं. बस हो गयी आपकी फेहरिस्त पूरी.

तस्वीर बोलती है

सारिका, अंक : 355

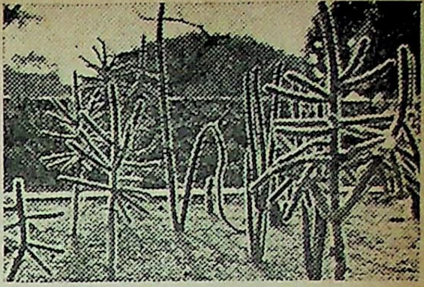

● छायाकार : योग जॉय

पुरस्कार विजेताओं को बधाई!

प्रथम पुरस्कार : 50 रुपये

अब ऐसी आंधियां आने को हैं
बदबख्त आलम में
कफस का जिक्र क्या, सारा चमन
उड़ जानेवाला है.
—मख्दूम

▣ ताज हसन, छोटी बलिया, ऊपर टोला, पो. लखमिनियां, जिला-बेगूसराय (बिहार)

द्वितीय पुरस्कार : 30 रुपये

तमाम शहर के रस्ते सजा दिये जायें
हम आ गये हैं तो कांटे बिछा दिये जायें
—कतील शिफाई

▣ बिमल मिसरी, अंदराबी मंजिल, बागात बरजला, श्रीनगर-190005

तृतीय पुरस्कार : 20 रुपये

समझ सोचकर गुल हटाये गये हैं,
सलीके के जंगल लगाये गये हैं,
हमें क्या पता था, हमें क्या खबर थी,
ये कांटे तो यारो उगाये गये हैं.

▣ परवेज, द्वारा प्रो. मंजीत महाजन, एम. एल. एस. एम. कालेज, सुंदर नगर, जिला-मंडी (हि. प्र.)

प्रशंसित शीर्षक

माना कि फस्ले-गुल का ठहरना
मुहाल था,
लेकिन खिजां तो मुफ्त में बदनाम
हो गयी.
—अमृतलाल 'इशरत'

▣ श्रीमती मधु मिश्र, गोरखपुर

ये बाग सारा सब्ज है,
हर शाख पे कांटे खिले.
अस्तित्व इनका दिख रहा,
सूखे दरख्तों की तरहा.

▣ चंद्र प्रकाश सुरोलिया, डिब्रूगढ़

शीशे सजावटों के जब टूटने लगे,
तब हमने घर में लाकर पत्थर सजा
लिये.
फूलों की चुभन रोज भला कौन
सहेगा,
यह सोचकर सेहन में कांटे उगा लिये.
—कुमार अनिल

▣ मुदित गुप्ता, मेरठ (उ. प्र.)

इस फेहरिश्त में जाहिर है युवा कथाकारों की एक बड़ी संख्या को कोई जगह कैसे दी जा सकती है. असगर वजाहत, स्वयं प्रकाश, पंकज बिष्ट, रमेश बत्तरा, सतीश जमाली, उदय प्रकाश, संजीव, धीरेंद्र अस्थाना, ये सब अ-राजनीति की जाति से बाहर रहेंगे ही.

तब रस्सी पर कौन भाई का लाल चढेगा? आचार्य के लिए यह एक भयंकर समस्या है कि नया चेहरा कहां से लायें जो राजनीतिक न हो और जनवादी भी न हो. यह स्थिति विकट-संकट की है. रस्सी बिचारी हाथ में झूल रही है और कोई मुर्गा फंस तक नहीं रहा.

तो भाई मेरे मुद्गल, आप उनसे लाख बातचीत करा लें, जब निजी राजनीति के खूंटों पर रस्सी तानकर, दम साधकर चलने से ही हमारे नटवर को फुर्सत नहीं तो समकालीन कथा साहित्य की सार्थकता को पहचानने की फुर्सत कैसे होगी.

अब तो यही अच्छा है कि वे हाथ की रस्सी को माला बनाकर 'निर्मल शरणम् गच्छामी' भजते रहें. □

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना शहर छोड़कर किसी दूसरे शहर में नौकरी करनी पड़े आपको . . . तो कसा लगेगा ! खासकर उस हालत में जब आप न अकेलापन बर्दाशत कर पाते हों. . . और न उदासी. अपरिचित माहौल में जीते एक युवक की व्यथा-कथा. . . जहां उसे अनायास मिलती है एक चिट्ठी . . . और उभर आती हैं मधुर स्मृतियां . . . और फिर. . . फिर वही व्यस्तता . . . वही अखबार की नौकरी. . .उपन्यास-अंश का पहला भाग.

गम रोजगार के

• ममता कालिया

दिल्ली के घर भी क्या घर. कोठरियां बनाम कमरे और कमरे बनाम बरामदे. एक तरफ दीवार में जड़ी हुई आलमारियां, दूसरी तरफ सड़क की ओर खुलनेवाली कतारबद्ध खिड़कियां. खिड़कियों की नीचाई और सड़क पर चलते आदमियों की ऊंचाई में अद्भुत तालमेल, कुछ ऐसा कि बेसाख्ता अंदरवालों की आंख बाहर और बाहरवालों की आंख अंदर टिकी रहे. न, न पर्दे कैसे लगाये जा सकते हैं, घर में हवा का एकमात्र रास्ता है ये खिड़कियां, हवा और मनोरंजन का. जिन्होंने पर्दे लगा रखे हैं, वे भी सरके ही रहते हैं. भला हो विद्युत-व्यवस्था का, खिड़की-दरवाजे, दिन-रात खुले रखने पड़ते हैं, चोरी और गर्मी इन दोनों आशंकाओं की भिड़ंत में गर्मी हर बार जीतती है.

विनय ने अपने इकलौते कमरे का इकलौता दरवाजा बंद किया और ताला डालने की रस्म पूरी की. यह ताला किसी भी चाबी से खोला जा सकता है. है तो किसी उम्दा कंपनी का पर जबसे विनय ने होश संभाला अपने घर में इसे इस्तेमाल होता देखा है. घिस-घिसकर चिकना लोहे का बट्टा जैसा हो गया है. यह और ऐसी कई कंडम चीजें मां ने उसके हवाले कर दी थी जब तीन साल पहले उसका नियुक्ति-पत्र घर पहुंचा था, कि उसे सत्ताईस नवंबर को कार्यभार ग्रहण करना है. कैसी खलबली मच गयी थी उस सुस्त इलाहाबाद में. विनय देश के इतने बड़े शहर के इतने बड़े प्रतिष्ठान में पत्रकार-प्रशिक्षार्थी की हैसियत से जा रहा है.

विनय रोज रात दस बजे के बाद घर लौटता है. तब वह इतना थका होता है कि कई बार बिना कपड़े बदले, बिना

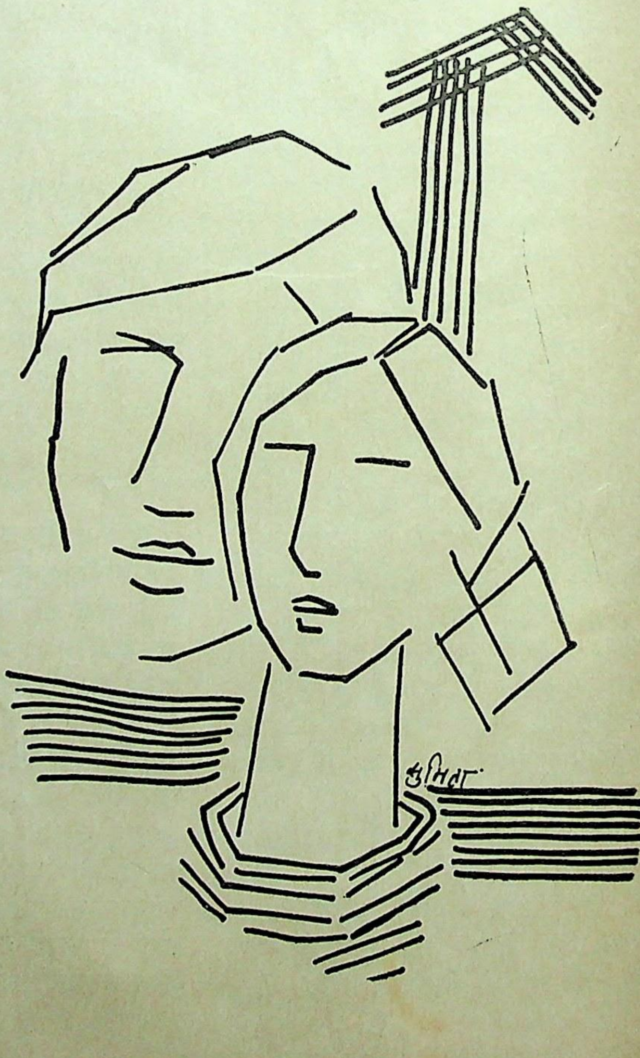

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चादर झाड़े, बिना बत्ती बुझाये तुरंत सो जाता है. कमरे की बदरंग दीवारें, खिसी चादर, तिड़के प्लेट-प्याले और टूटा स्टोव उसे सिर्फ तब नजर आते हैं जब कोई दोस्त अचानक छुट्टी के रोज चला आता है. दफ्तर के बाद वह टी-हाउस चला जाता है. वहां शोर का एक अंश बनना उसे अच्छा लगता है, सिगरेट पीना भी और कभी कभार कॉफी. इन तीनों चीजों की तासीर ऐसी है कि इनके रहते भूख महसूस नहीं होती, न अकेलापन, न उदासी.

वह इन तीनों में से दो से हमेशा घबराता आया है. वह न अकेलापन बर्दाश्त कर सकता है न उदासी. कई बार सुबह चार-पांच बजे के बीच मकान मालकिन की नवजात लड़की के रोने से उसकी नींद टूटी है और फिर उसे बड़ी कोफ्त हुई है. नौजवान अविवाहित आदमी का सुबह चार-पांच बजे उठ जाना अपने-आप में एक बेहूदा हरकत है. विनय अपने आसपास के मकानों की बेहद घरेलू प्रारंभिक आवाजें सुनता, दूध की बोतलों की छींकों में छनछनाहट, महरियों की खटखट और बूढ़ों के गले की खरखराहट जो लाख थूकने पर भी कम नहीं होती. हर आवाज के साथ-साथ आराम एक असंभव प्रक्रिया हो जाती. कहीं पड़ोस की युवा गृहिणी का बिंदी-पुछा चेहरा दिख गया तो गजब. अकेलापन और आत्मघाती उदासी बस गर्दन दबोच लेती.

विनय के दफ्तर में कई सेक्शन हैं. उसके सेक्शन में सात लोग काम करते हैं. इनमें दो लड़कियां हैं और पांच विभिन्न आयु के अधेड़. एक तो उसका बॉस ही. विनय आज तक अंदाजा नहीं लगा पाया कि उसके बॉस की उम्र क्या है. दरअसल बॉस के दर्जी और नाऊ दोनों ही बहुत होशियार हैं. कई बार तो विनय को बॉस अपने से भी ज्यादा युवा और खूबसूरत लगता है, खास तौर पर जब वह अपनी केबिन में बैठा किसी लड़की से बातचीत करता होता है तब उसका चेहरा एक अविवाहित आवेश से आलोकित रहता है, हालांकि वह बड़ा पुराना ब्याहा हुआ है. विनय महज उसके चेहरे की रंगत देखकर बता सकता है कि इस वक्त वह किससे बात कर रहा है. यह रौनक पत्नी से बात करते समय नदारद रहती है, बल्कि उस वक्त तो बॉस के चेहरे पर मुर्दनी छा जाती है, बस 'हां-हूं' से काम चलाता है. वैसे विनय ने कभी यह नहीं चाहा कि बॉस का चेहरा पढ़ना उसके जीवन का उद्देश्य बने. पढ़ना ही है तो अखबार क्या बुरा है! बल्कि आजकल अखबार से बढ़कर अच्छा शगल कोई हो नहीं सकता. सत्तर पैसे में प्रतिदिन पच्चीस सिनेमाओं की जानकारी, पंद्रह विधायकों की उठापटक, पांच हत्या और एकाध आत्महत्या का मसौदा! इतना मैटर तो उस डेढ़ रुपये के 'ज्योति' साप्ताहिक में भी नहीं होता जिसमें वह काम कर रहा है. बॉस का कहना है कि विनय को देश के अन्य प्रमुख साप्ताहिक पत्रों का अध्ययन करना चाहिए और एक रिपोर्ट द्वारा सुझाव देना चाहिए कि वे कौन-से कारण हैं कि कुछ अन्य साप्ताहिकों का सर्कुलेशन चार लाख है जबकि 'ज्योति' का महज एक लाख पंद्रह हजार. बिना सर्वेक्षण किये ही विनय बॉस को बतलाना चाहता है कि सबसे पहली

बात, तिरसठ करोड़ की आबादीवाले देश में जहां हिंदी जाननेवालों की संख्या बहुत है किसी साप्ताहिक का चार लाख सर्कुलेशन फख्र का नहीं फजीहत का विषय होना चाहिए. दूसरे, यह एक सीधी-सी बात है कि कागज की किल्लत के इस युग में सर्कुलेशन जितना बढ़ेगा, घाटा भी उतना ही बढ़ेगा. फिर भी अगर बॉस महोदय 'ज्योति' का सर्कुलेशन बढ़वाना चाहते हैं तो उन्हें दो-चार काम फौरन करने पड़ेंगे. नंबर एक उन्हें दफ्तर में ज्यादा देर बैठना पड़ेगा और पीटरसन स्विमिंगपूल में कम, दूसरे उन्हें उप-संपादकों द्वारा तैयार की गयी सामग्री दिलचस्पी से पढ़कर ओ. के. करनी होगी, तीसरे उन्हें बदशक्ल नेताओं की विरूप तस्वीरें और व्यर्थ इंटरव्यू छापने तत्काल बंद करने होंगे. चौथे, शहर की सुंदर लड़कियों को नवोदित लेखिकाएं बनाने के स्वप्न को अधूरा छोड़ देना होगा. कितनी अच्छी बात है कि विनय के अंदर साहस की कमी है. यानी साफ बात कहने के साहस की. विनय मानता है कि यह कमी उसके अंदर निरंतर बनी रहे. नौकरी का बना रहना, इसी कमी के बने रहने पर निर्भर है.

एक और चीज जिससे विनय सबसे ज्यादा घबराता है,

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेरोजगारी है. शिक्षा के बाद उसने जीवन के पांच वर्ष चप्पल चटकाते, फिजूल घूमते और फालतू रहते बिताये हैं. उन वर्षों में उसने अपने हाथों से जीवन की हर बेहतरीन चीज फिसलती देखी है. पैन से लेकर लड़की तक. घर की गाड़ी का एक अतिरिक्त पहिया बना. वह वर्षों व्यर्थ कामों में जुताया गया है—मेहमानों का रिजर्वेशन कराना, बहन को ससुराल छोड़ने जाना और लेकर आना, मां को डाक्टर के ले जाना, भतीजे का होमवर्क कराना, रजिस्ट्री, पार्सल कराना, बच्चों को स्कूल पहुंचाना, स्कूल से लेकर आना, और इतवार को जब सारा परिवार सिनेमा जाये तो घर की चौकीदारी करना. बल्कि बेकारी के आखिरी वर्ष तो उसके लिए बाकायदा काम ढूंढे जाते थे, पिता दफ्तर जाते-जाते बारह पन्ने का बिल थमा देते, "विन्नू जरा इसे चेक कर देना टोटल ठीक है या नहीं, तेरा वक्त भी कट जायेगा." मां दाल चढ़ाकर पड़ोस में जा बैठती बुनाई लेकर, "विन्नू जरा दाल का ध्यान रखना और बिल्ली का भी." राह चलते पिता और भैया के परिचित जड़ देते, "विनय भई, घर में मेहमान आये हैं, उन्हें संगम नहला लाओ." जब वह चुपचाप खटिया पर पड़े-पड़े सोचना या सोना चाहता, कोई न कोई किसी न किसी बहाने उसे उठाकर ही चैन लेता. पिछली गर्मियों में पानी ऊपर नहीं चढ़ता था, सुबह से ही घर में पानी की किच-किच शुरू हो जाती. मां ने कहा टुल्लू पंप खरीद लेना चाहिए, उससे पानी नीचे के नल से चढाया जाता है. कुछ देर वह टुल्लू पंप की कीमत पर विचार-विमर्श हुआ फिर सहसा पिता ने सस्ता, सुंदर, टिकाऊ और मौलिक सुझाव पेश किया, "जवान आदमी है विन्नू, सुबह शाम चार चार बाल्टी पानी ऊपर चढ़ा दिया करेगा, काम करने से शरीर में चुस्ती भी रहती है." और पूरी गर्मियां बालटियां ढोते वह मन ही मन हंसता रहा, 'मैं विनय कुमार, ग्रेजुएट, नहीं हूं, मैं टुल्लू पंप हूं, टुल्ले पंप बिगड़ सकता है, मैं बिगड़ भी नहीं सकता.'

काफी निराशा और विनोद में उसने इस नौकरी के लिए पोस्टकार्ड पर आवेदन-पत्र दिया था, बिना एक भी प्रमाण-पत्र संलग्न किये. फिर एक लिखित परीक्षा हुई थी जिसमें वह आ गया. साक्षात्कार के समय जो पहली बात उससे पूछी गयी वह थी, "आपने अपना आवेदन-पत्र पोस्टकार्ड पर क्यों भेजा था?" विनय ने मुस्कराकर कहा, "जी, संचार का इससे सस्ता और कोई साधन नहीं था, इसलिए."

जैसे अच्छे मौसम की शुरुआत के साथ ही प्रवासी पंछी वापस लौट आते हैं उसी प्रकार सुचित्रा की चिट्ठी विनय के पास दिल्ली आयी थी. लिफाफे पर ही उसकी लिखावट पहचानकर उसने चपरासी से चिट्ठी झपट ली. सुचित्रा ने पता लिखा था—श्री विनय कुमार, संपादक, ज्योति साप्ताहिक, दिल्ली. विनय को लगा अगर यह लिफाफा किसी और के द्वारा उस तक आता तो कितना हास्यस्पद होता, उसे प्रशिक्षार्थी की हैसियत से संपादक की हैसियत पर पहुंचाता हुआ यह पता. शायद सुचित्रा ने उसे खुश करने के लिए ऐसा लिखा था. उसे खुश करने को उसने और भी बहुत कुछ लिखा था—'आपके बिना शहर की सदाबहार गंगा सूख चली है, तन्वंगी गंगा ग्रीष्म-विरल.' ऐसा लगता है जैसे काफी अभ्यास के बाद पत्र लिखा गया है. सुमित्रानंदन पंत के अलावा प्रसाद, महादेवी और दिनकर की पंक्तियों का भी बहुल प्रयोग सुचित्रा ने किया था. एक तरह से उसने सिद्ध कर दिया था कि बी. ए. का पढ़ा-लिखा अभी वह भूली नहीं है. अपनी पाठ्य-पुस्तक का भरपूर उपयोग करने के बाद उसने पत्र के बीचोबीच, पंक्तियों के मध्य में छोटे-छोटे प्रश्न लिखे हुए थे, 'कब आ रहे हो, कहां रहते हो, कैसे खाते हो, इतवार को क्या करते हो? भूल तो नहीं गये? भानु तुम्हें याद करके रोता है.'

चिट्ठी विनय ने कई बार पढ़ी हालांकि एक ही बार में उसे याद हो गयी थी. उसे बार-बार सुचित्रा की चतुराई पर दुलार और हंसी आ रही थी. यही सुचित्रा कुछ माह पहले सीधे मुंह उससे बात नहीं करती थी. वह कुछ भी कहता, कभी नहीं मानती. जानबूझकर उसका कलेजा जलाने के लिए अपने साथ अपने छोटे भाई भानु और बहन राका को ले आती. बल्कि एक बार तो उसके इंगलैंडवासी चाचा उसका रिश्ता वहां बसे एक अजनबी सजातीय किंतु अध्यापक से तय कर रहे थे और उसने तनिक भी प्रतिरोध नहीं किया. जब विनय को पता चला तो वह बौखला गया था. उसने तर्क किया था. लेकिन सुचित्रा ने कहा कि वह उसके भाग्य से जलता है इसीलिए कुतर्क कर रहा है. तब विनय ने एक हक्का-बक्का अंदाज में पूछा, "तुमने यह भी सोचा है फिर मेरा क्या होगा?" सुचित्रा ने अपनी चोटी से खेलते हुए

लघुकथा

परीक्षण

दूसरी बार 'भेड़िया आया! भेड़िया आया!' का शोर सुनकर गांव के लोग जब उस गडरिये के पास पहुंचे तो उन्होंने देखा... लड़का टीले पर खड़ा हंस रहा है. उन्हें बड़ा क्रोध आया. वे उसे पकड़कर पीटने को हुए तो वह लड़का बोला, "इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है. वह रहा एक आदमी जो भेड़ों में छुपा है. उसी ने मुझ से कहा था—"तुम 'भेड़िया आया, भेड़िया आया' चिल्लाओ. यदि गांववाले तुम्हारा विश्वास करते हुए दुबारा भी आ जाते हैं तो यहां प्रजातंत्र प्रणाली शुरू कर देंगे!" □

▣ मंगल बादल

● शहीद भगत सिंह कालेज, राय सिंह नगर—335051

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा, "कुछ नहीं होगा, दस दिन में सब ठीक हो जायेगा." यह तो बाद में लड़केवालों ने आपत्ति उठा दी कि लड़की की लंबाई बहुत कम है और रिश्ता खारिज हो गया. सुचित्रा कुछ रातें तकिए में मुंह छुपा रोयी थी, फिर उसने एम. ए. ज्वाइन कर लिया. उसने विनय पर भी वापस ध्यान देना शुरू कर दिया किंतु विनय इस पुनरागमन का आनंद देर तक नहीं ले पाया, अगले ही सप्ताह उसका नियुक्ति-पत्र आ गया.

दिल्ली आकर व्यस्त होना विनय को बहुत अच्छा लगा. उसने पाया अरसे से वह व्यस्त नहीं हुआ था. इसलिए उसके वरिष्ठ साथी जब कुड़कुड़ाते कि काम बहुत ज्यादा है, उसे आश्चर्य होता. उसका खयाल था दफ्तर काम की ही जगह होता है. उसे जो भी काम सौंपा जाता, उसे वह अतिरिक्त उत्साह से कर डालता, कुछ इस कदर कि साथी जल्द उससे सतर्क और ईर्ष्यालु होने लगे.

सिवाय सेठी के. सेठी बड़ा ही अलमस्त आदमी था. उसे इस दफ्तर में कुल पांच साल हुए थे और शादी किये सिर्फ डेढ़ साल. वह गाजियाबाद रहता था और रोज बस से दिल्ली आता. उसे अक्सर हड़बड़ी रहती पांच बीस की बस पकड़ने की जबकि अक्सर वह उससे छूट जाती. फिर छह चालिस तक वह बड़ा परेशान रहता. अहिंदी-भाषी होने के नाते उसे कई ठेठ शब्दों का पारंपरिक अर्थ नहीं पता था. ऐसे समय वह विनय की मदद लेता. कई बार फीचर्स से संबंधित फोटो, सामग्री आदि में वे एक-दूसरे की मदद कर देते.

एक बार सेठी विनय को अपने घर ले गया था. वह दिन विनय की याद्दाश्त में एक हसीन दिन था. दिन क्या, पहुंचते-पहुंचते रात हो गयी थी. बस में धूल धक्के खाते किसी तरह जब वे कविनगर पहुंचे थे, शाम के सभी रंग धुंधुआ गये थे. आसमान की जगह उस वक्त अंगीठियां दहक रही थीं. जगह-जगह चौराहों पर भैंसें दुही जा रही थीं. कहीं-कहीं लंबे चौड़े भव्य मकान खड़े थे, दिल्ली की डिफेंस कालोनी की नकल में लेकिन अधिकांश औसत मकानों के बीच वे काफी अश्लील लग रहे थे.

सेठी की पत्नी ने प्रसन्न मुद्रा में उन्हें चाय पिलायी थी. विनय को वह बहुत सुंदर और स्मार्ट लगी थी. उसे सेठी से रश्क हुआ. वह दो-तीन घंटे वहां रहा था और रात का खाना खाकर आखिरी लोकल ट्रेन से चला था. पर पूरे समय में एक भी बार उसने सेठी की पत्नी को झुंझलाते या चिढ़ते नहीं देखा था. हल्के-फुल्के बदन, नन्हे कद और खुले रंगवाली जयश्री सेठी उसे बेहद आकर्षक और स्फूर्तिदायक लगी जैसे बढ़िया चाय, खुली धूप या नर्म चांदनी. जयश्री शोख लाल रंग की मैक्सी पहने हुई थी और उसका कमरे में आना और जाना विनय को यों लगता रहा जैसे कोई तितली यह आयी और वह गयी. आमतौर पर विवाहित स्त्रियां उसे आकृष्ट नहीं करती थीं. वह दिमाग में विवाहित स्त्रियों को तीन वर्गों में बांटकर देखा करता था. महासुस्त, महाचुस्त, और महात्रस्त. अपने कस्बे में अब तक निकट से देखी स्त्रियों की वह यही पहचान और वर्गीकरण कर पाया था. कई स्त्रियों की शक्ल पर शादी के बाद ऐसी मनहूसियत उतर आयी थी कि लाख नहाने और मेकअप करने से भी रौनक वापस नहीं लौटती. वे सारा दिन लदर-पदर काम निपटाती और दिन-दोपहर आंचल से मुंह ढांप यों ऊंघती मानों बिना सोचे वे मर जायेंगी. विनय को ताज्जुब होता था कि इन औरतों के पति शाम दफ्तर से लौटने पर पत्नियों की बोर शक्ल देख वापस दफ्तर क्यों नहीं चले जाते. वह उन पुरुषों की सहनशक्ति की दाद देता जो ऐसी रुंआसी, निंदासी स्त्रियों के साथ जीवन काट रहे थे. इनसे नितांत भिन्न वे परिवार थे जिनमें शादी के तत्काल बाद घर की समस्त बागडोर हाथ आ जाने से एक विशेष सर्वज्ञपना आ जाता. घर की हर घटना-दुर्घटना पर उनका घाघ दृष्टिकोण हावी रहता. ऐसी स्त्रियों के पतियों की शक्ल प्रायः मेमने जैसी होती या खरगोश. ये स्त्रियां सब कुछ अपने हाथ में रखती, पति से लेकर पासबुक तक. धीरे-धीरे उनकी शक्ल खूंखार होती जाती और उनके पतियों की निरीह. अंतिम वर्ग उन स्त्रियों का था जो पीड़ा की प्रतिमूर्ति कहला सकती थीं. यह वर्ग अपेक्षाकृत छोटा था. विनय को अपनी मां भी इसी वर्ग अपेक्षाकृत की प्रतिनिधि दिखायी देती. जबसे उसने होश संभाला, अपनी

लघुकथा

बड़े लोग

▣ रमेश आनंद

"मम्मी, मैं नीता के साथ खेलने जाऊं?"

"नहीं! कहा न, यहीं खेल."

"लेकिन मम्मा, आप मुझे नीता के साथ क्यों नहीं खेलने देते?"

"बेटा, वे छोटे लोग हैं."

"छोटे लोग कौन होते हैं, मम्मा?"

"नीता जैसे!"

"क्यों?"

"उसकी मम्मी कुर्सियां बुनती हैं, पापा क्लर्क हैं और नीता के कपड़े कितने गंदे होते हैं!... ऐसे ही लोग छोटे होते हैं."

"पर मम्मा, हमारी 'धर्म-शिक्षा' की किताब में लिखा है कि सब इंसान बराबर हैं. फिर हम बड़े कैसे हो गये?"

"तेरे पापा बहुत बड़े ठेकेदार हैं. हमारे पास फ्रिज है, टी.वी. है, कार है. . . बहुत पैसा है."

"पैसा कैसे आता है, मम्मा?"

"काम करने से."

"अरे! काम तो सारा दिन पापा के मजदूर करते हैं. पापा तो कोई काम करते ही नहीं!"

"इसीलिए तो हम बड़े हैं पगली!" मम्मा ने ठहाका लगा दिया. ◻

● 103/15-ए, चंडीगढ़.

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाकिस्तानी किस्सा

जरूरतमंद

▣ अहसान मलिक

एक बदहाल शख्स फटेहालों लाइब्रेरी में दाखिल हुआ और आवाज लगायी, "हाजरीन, मुझ गरीब पर भी जरा नजरे-करम हो जाये. मौला आपको कल इस का उजर देगा."

यह सुनकर लोगों ने जेब में हाथ डाले और यथासामर्थ्य रकम जेब से निकालकर जरूरतमंद की ओर बढ़ा दी.

यह माजरा देखकर जरूरतमंद की आंखों में आंसू डबडबा आये. उसने कहा, "भाइयो, मैं भिखारी नहीं, शायर हूं. आज के अखबार में जो गजल छपी है, उसकी दाद वसूल करने आया हूं." □

● प्रस्तुति : सुरजीत

मां को कूलते, कराहते या सिसकते ही पाया. उनके जिस्म का हरेक हिस्सा नामुराद दर्द ने दबोच रखा था, हर रात हर करवट के साथ आह-ऊह की अस्फुट आवाजें उनके मुंह से निकलतीं और विनय को परेशान कर जातीं. उसे अपने पिता पर अक्सर क्रोध आता जो पास पड़े बेखबर खर्राटे भरते रहते. सुबह उठकर मां फिर काम में लग जातीं. दिन के अधिकांश भाग में उन्हें झाड़ू लगाते, कपड़े धोते, खाना पकाते, बाजार जाते देखा जा सकता था. हरेक की आवाज पर हाजिर, हरेक की चिंता में चिंतित, मां विनय को शोषित वर्ग की सबसे करुण इकाई लगी थीं. वह नहीं जानता था कि उनका दुख कैसे दूर करेगा लेकिन उनका दुख दूर करना चाहता था. अपने ही नहीं अपने दोस्त, परिचितों, रिश्तेदारों में उसे मां एक पीड़ित इकाई में ही दिखी थी.

जब वह छोटा था, कभी मां को चिंतित और उदास देखता तो उनसे सटकर लेट जाता और उनके हाथ दबाते हुए पूछता, "मां, तुम चुप क्यों हो, बोलो, बोलो." मां नहीं बोलतीं, बस उसे अपने से चिपटा लेती, "तू बड़ा हो जा, तो मेरे सारे दुख दूर हो जायें." तब उसे लगता काश भगवान उसे रातोंरात लंबा कर दे, भैया की तरह उसके भी दाढ़ी-मूंछ उग जाये और सुबह वह बाकायदा शीशा, साबुन, और रेजर लेकर शेव करने बैठे, फिर पिता की तरह टिफिन हाथ में ले काम पर जाये. तब उसे यह नहीं सूझता था कि पूछे, 'मां भैया तो बड़े हैं, फिर वे तुम्हारा दुख दूर क्यों नहीं करते?' उसे तो बस यही लगता कि उसके बड़े होते ही मां के सब दुख वाकई दूर हो जायेंगे.

मुसीबत तो यह थी कि वह बड़ा हो गया था और मां के दुख अब भी दूर नहीं हुए थे. बल्कि उनका चेहरा और भी दारुण होता जा रहा था. भाभी ने उनको चौके से विस्थापित कर कोठरी में पहुंचा दिया था. विनय के लिए यह जानना एक पहेली थी कि मां अब, उसके बारोजगार हो जाने पर खुश थीं या नहीं. वह प्रतिमाह उनके नाम कुछ पैसे भेजने का संकल्प करता और पाता कि प्रति माह पैसे अपर्याप्त होते जा रहे हैं.

शनिवार की शाम विनय को बड़ी बोझिल लगने लगती. मुश्किल यह थी कि शनिवार के बाद रविवार आता और उसकी समझ में कभी नहीं आया कि रविवार को क्या किया जाये. अपने अकेले कमरे में उसका जरा भी मन नहीं लगता. अच्छी तरह रविवार बिताने के लिए लोग अखबार पढ़ते हैं, चाय पीते हैं, नाखून काटते हैं, बिना नहाये कमरों में घूमते हैं, रेडियो पर प्रायोजित कार्यक्रम सुनते हैं, दोपहर के खाने में कुछ स्पेशल खाते हैं. शाम अपने बीबी-बच्चों समेत सिनेमा जाते हैं. यह मनोरंजन का एक आदर्श फार्मूला था जो बगैर बीवी कार्यान्वित नहीं किया जा सकता. लेकिन विनय के लिए बीबी की कल्पना बहुत जल्द आशंका बन जाती थी. वह सोचता उसके घर में न चटाई है न चिमटा, पत्नी आ भी गयी तो क्या कमाल कर दिखायेगी. अपने कमरे में अकेले पड़े रहने से सब कुछ जानते-बूझते भी यह मूर्ख कामना और भी सक्रिय हो जाती थी, इसलिए विनय अकेले, निष्क्रिय रहने से कतराता था. वह चाहता था कैलेंडर पर दिखती इन लाल तारीखों पर नीली स्याही पुत जाये, शनिवार के एकदम बाद सोमवार आ जाये और उसकी दैनिकता क्रमबद्ध चलती रही, घर से दफ्तर, दफ्तर से टी-हाउस, टी-हाउस से वैष्णव भोजनालय, वैष्णव भोजनालय से घर, घर पहुंचकर पैरों में हो एक पथरीली थकान और आंखों में एक बेहोश नींद. लेकिन ऐसा कभी नहीं होता. शनिवार के बाद बाकायदा रविवार आता और विनय को खाली डिब्बे-सा लुढ़कता छोड़ जाता, कभी किसी बेमजा पिक्चर हाल के क्यू में, कभी किसी परिचित के परिवार का अनावश्यक अंग बना, कभी किसी दोस्त के घर ताला ठुका देख व्यर्थ व्यय होते हुए. इस बार जब इतवार के बाद एक साथ दो छुट्टियां पड़ीं तो विनय बौखला गया. जब एक दिन ही इतना नागवार गुजरता है तो समूचे तीन दिन. सेठी ने चलते-चलते शनिवार को कहा, "सोमवार को तो हम कहीं जानेवाले हैं तुम मंगल को घर आ जाना. विनय को कुछ राहत महसूस हुई. अब केवल दो दुश्मन बाकी थे, इतवार और सोमवार. संपादक ने उसे कुछ युवा गायकों पर सचित्र फीचर तैयार करने के लिए कहा था. इन छुट्टियों में वह यह काम निपटाना चाहता था.

'संगीत और पश्चिम के युवा गायक' शीर्षक से जब उसने अपना लेख समाप्त किया तो विनय को काफी अच्छा लगा. उसके खयाल से लेख अच्छा बन पड़ा था और संपादक के बताये सभी कोण उसने शामिल कर लिये थे. पिछले पांच इंटरव्यू, यह लेख और एक अन्य लंबी रिपोर्ट के बल पर ही उसका स्थायीकरण होना था. शाम को श्याम बेनेगल की 'मंथन' देखी, गिरीश कर्नाड के कारण बेहद सुंदर लगी. मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रफुल्ल रहा. लौटते हुए एक पंजाबी ढाबे में राजमा और तंदूरी रोटी खायी. खिलानेवाले छोकरे ने रोटियां गिनने में भूल कर दी जिससे दो रोटियों के दाम बच गए. विनय को लगा उसे यकायक बोनस मिल गया है, रोटियों का बोनस.

अगले दिन जब वह सेठी के घर के लिए चला दोपहर हो रही थी. यह एक ऐसा वक्त था जब दोपहर का खाना खाने के लिए बहुत जल्दी थी और नाश्ते के लिए बहुत देर. लिहाजा उसने कई बार चाय के अतिरिक्त नाश्ते में केवल दो-चार सिगरेट पी लिए.

कश्मीरी गेट पर एक प्राइवेट बस ठसाठस भरी गाजियाबाद के लिए तैयार खड़ी थी. लेकिन वह उससे पीछे खड़ी डी॰टी॰सी. की बस में बैठ गया. यह बस भी फौरन भर गई लेकिन चली समय से. तरह-तरह की देह-गंध, जानलेवा गर्मी में जबर्दस्ती नथुनों तक आ रही थी. विनय ने खिड़की से बाहर देखने की कोशिश की. बाहर गति थी, अंदर दुर्गति. बस की बगल से तिपहिया स्कूटर ओवरटेक कर आगे बढ़ गया, कुछ इस रफ्तार से कि पीछे लिखा बालघुट्टी का विज्ञापन विनय को ऐसा लगा जैसे लिखा हो 'बच्चों को दुष्ट बनाती है, बालघुट्टी' यह तो सोचने पर ही स्पष्ट हुआ कि जल्दबाजी में आंखें पुष्ट को दुष्ट पढ़ गईं. यमुना पुल आया और बस रेंगने लगी. गाड़ियों, ट्रकों और बसों की एक लंबी कतार थी जिनकी दुर्दमनीयता के बीच से कितने ही स्कूटर-सवार व्यूह भेदकर आगे सरक रहे थे. विनय को याद आया जब कभी वह कहीं बाहर से इलाहाबाद लौटता बीच में गंगा का पुल पड़ता और कितने ही लोग बस की खिड़की से उचक-उचककर पैसा फेंकते, प्रणाम करते, जय गंगा मैया बोलते. यहां बस में से किसी ने नदी की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखा.

शाहदरा के आगे बस रुक गयी. सामने रेल की पटरी थी, फाटक पर अवरोधक लगा था, बड़ा-सा भारी डंडा. एक स्कूटर आया और उसका चालक डंडे को थोड़ा-सा उचकाकर स्कूटर निकाल कर ले गया. उसके बाद दो तीन साइकिल वालों ने उसका अनुसरण किया, फिर एक रिक्शा इसी तरह गुजरा. दिल्ली-गाजियाबाद की शटल सीटी बजाती दिख रही थी लेकिन लोगों के पास नियम-पालन का वक्त नहीं था. नियम-उल्लंघन में जो आनंद था वह नियम-पालन में कहां. विनय गिनता रहा. जब तक गाड़ी नहीं गुजरी कुल उनसठ लोगों ने नियम का उल्लंघन किया. उल्लंघन करने वाले सभी सफेदपोश थे और शिक्षित लग रहे थे. रास्ते की हर दीवार नियम के नारों से रंगी पड़ी थी. 'अनुशासन ही देश को महान बनाता है.' 'परिश्रम के सिवा और कोई रास्ता नहीं है.' कितनी जल्द इन नारों को घुन लग गया था हालांकि नारों में कोई खोट नहीं था. जाने क्या बात है कि हर चीज में हमारे मुल्क में घुन बड़ी जल्दी लग जाता है अनाज से लेकर आदर्श तक में. विनय ने सोचा. नरेंद्र मोहन अस्पताल स्टाप पर बस झटके से रुकी, कुछ खांसते-कांखते लोग बस में चढ़े. अपस्ताल के ऐन सामने मोहन मीकिंस था. शराब-उद्योग का भव्य परिसर. शराब से अस्पताल, वेश्यावृत्ति से मंदिर और घूसखोरी से धर्मशालाओं के निर्माण में लोग सबसे आगे थे. विनय इन विसंगतियों पर एक आक्रामक लेख लिखना चाहता था, पर उसका संपादक आजकल उससे पूर्वजन्म व पुनर्जन्म पर लिखवा रहा था. कुछ समय पहले जब आंध्रप्रदेश में तूफान आया था और हजारों की तादाद में अकाल-मृत्यु हुई थी, विनय आंध्र प्रदेश जाकर इस प्राकृतिक प्रकोप की आंखों देखी रपट तैयार करना चाहता था लेकिन उसके संपादक ने उसे भेजना उचित नहीं समझा. उन्होंने उस रपट के लिए एक घाघ, समाप्तप्राय उप-संपादक ब्रजकिशोर अग्रवाल को रवाना कर दिया और साथ में कंपनी का सबसे उत्कृष्ट फोटोग्राफर. हफ्ते भर के चित्रों के साथ. चित्रों में लाशें इतनी आकर्षक लग रही थीं जितनी मछलियां. कैमरे ने मृत्यु की एक अश्लील व्यंजना कर डाली थी. चित्र देखते हुए संपादक के मुंह से बेसाख्ता निकल रहा था, 'सुंदर, अति सुंदर!' अंत में उसने फोटोग्राफर को बधाई दी थी जिसने इतने खूबसूरत छायाचित्र उतारे थे. सरकारी आंकड़ों, दिलासों और वक्तव्यों से भरे उस आधा कालम मैटर को जगह-जगह तस्वीरों के **साथ** छापा गया था और शीर्षक दिया था, 'मृत्यु-विनाश' जबकि प्रूफ पढ़ते हुए विनय की आंखें बार-बार पढ़ रही थीं 'मृत्यु-विलास'. 'ज्योति' साप्ताहिक में इसी प्रकार हर सप्ताह मृत्यु, अपराध, बलात्कार, महंगाई, भ्रष्टाचार, बाढ़, सूखा और खेलकूद पर फीचर छापे जाते थे. रुतबा रहता कि देश की समकालीन समस्याओं से सर्वाधिक जुड़ा मात्र यही पत्र है. लेकिन जब विनय जैसा कोई जोशीला नौजवान पत्रकार समस्याओं को कुछ और कुरेदने की कोशिश करता, संपादक अपनी भृकुटि से उसे बरज देता. कहता, पहले अपना पाठक पहचानो तब लिखो. आज का पाठक खुद इतनी मुश्किलों में उलझा रहता है कि वह समाज की किसी मुश्किल से तमाशबीन की तरह सीमित सरोकार चाहता है. बहुत देर तक गुत्थम-गुत्था नहीं होना चाहता. उसके पास वक्त नहीं है, धैर्य नहीं है, गांभीर्य नहीं है, चिंतन की कोई पृष्ठभूमि नहीं है. अपने लेखन से तुम उसके दिमाग पर ज्यादा बोझ डालोगे तो वह पत्रिका पटककर टी.वी. खोल लेगा, रेडियो सुनने लगेगा, पिक्चर चला जायेगा. पत्रिका आखिर किस-किस से लड़ेगी. याद रखो हमारे पत्र का उद्देश्य है हर हफ्ते मनोरंजन. पाठक को कभी इतना मत कोंचो कि वह भाग खड़ा हो. उसकी दिलचस्पियों को सहलाओ. उसके मस्तक पर बाम लगाओ चोट नहीं. कविनगर पहुंचते-पहुंचते बिजली चली गयी. इसका पता विनय को तत्काल चल गया. लोग हाथ में पंखा लिए धड़ाधड़ बरामदों में आ गये.

अगले अंक में

एक आदमी की जिंदगी से जुड़ी और कितनी चीजें होती हैं जो प्रत्यक्षतः उससे जुड़ी हुई भले ही न लगती हों... पर उसे गहरे में प्रभावित जरूर करती हैं!

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवाशिष सेनगुप्ता के जीवन का एक दिन

• जितेंद्र भाटिया

खिड़की के नीचे हांक लगाते 'मुड़ीवाले' की कर्कश आवाज से मेरी आंख खुलती है तो सूरज पड़ोस के बरुआ की टूटी छत को लांघ अमरूद की डाल के बराबर आ चुका होता है. मैं एक बार चादर से सिर को ढंक कर फिर से फुटबाल के शोर की उस रूमानी दुनिया में खो जाने की कोशिश करता हूं. लेकिन टूटे हुए सपने की परछांइयां फिर लौटकर नहीं आतीं.

सामने आले पर पड़े चाय के कप में दोहरी-तिहरी पपड़ियां जम चुकी हैं. दीदी सुबह-सुबह दूध उबालती है, चाय बनाती है, 'आनंद बाजार' की गुत्थम-गुत्था प्रति को हाथ में लिये पहले बुड्ढे को, फिर मुझे उठाने की औपचारिकता निभाती है, और उसके बाद बाल खोलकर दफ्तर जाने की तैयारी में जुट जाती है. मैं एक आंख खोलकर कमरे की रोशनी का जायजा लेता हूं और जम्हाई लेकर फिर से सो जाता हूं. दीदी द्वारा बनाया गया चाय का कप मेरे इंतजार में आले पर पड़ा बूढ़ा होता रहता है.

आज 'आर्यन स्पोर्टिंग क्लब' के दुलाल बाबू ने शाम को चार बजे के बाद मिलने को कहा है. आर्यन स्पोर्टिंग क्लब 'ए' डिवीजन फुटबाल लीग, कलकत्ता. मेरे कानों में खुद-ब-खुद रेडियो कमेंटेटर अजय बोस की आवाज किसी मुनादी की तरह गूंगने लगती है. . . "फेडरेशन कप के फाइनल की ओर आर्यन स्पोर्टिंग का यह पहला मैच जिसमें पहली बार क्लब के कलर्स पहनकर 'फुल बैक' की जगह मैदान पर उतर रहे हैं, कलकत्ता के होनहार और उभरते हुए फुटबाल खिलाड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवाशिष सेनगुप्ता, देवाशिष सेनगुप्ता जिन्होंने कलकत्ता के फुटबॉल इतिहास में एक नया रिकार्ड कायम किया है और . . . " तालियां. शोर. अभिवादन में गूंजता स्टेडियम और उस स्टेडियम के बीचोंबीच खड़ा मैं; देवाशिष सेनगुप्ता. . .

"देबूऽऽऽऽऽ!" बारामदे से उठती बुड्ढे की वजनदार आवाज मेरी खुशनुमा सोच को एकबारगी झिंझोड़ती हुई चली जाती है. खतरे को गंभीरता को समझते हुए मैं एक झटके के साथ उठता हूं और आदतन अपना हाथ आले पर पड़े चाय के कप की ओर बढ़ा देता हूं, बुड्ढा यानी साक्षात् 'फादर फिगर'—बाबा. अभी थोड़ी देर में उस तरफ से 'हरामजादा' विशेषण सुनाई देगा जो खास मेरे लिए होगा. बुड्ढे को अपने इकलौते बेटे के जरिए अपनी गैर-कानूनी वैवाहिक स्थिति पर प्रकाश डालते रहने की आदत-सी हो गयी है. मैं एक नजर उठाकर बरामदे की ओर देखता हूं और फिर ठंडी चाय को गले से नीचे गटकते हुए गाली के वजन से पूरी तरह मुक्त हो जाता हूं.

"मा गो! . . . मा गो! !" नीचे दालान के दरवाजे पर खड़ा लंगड़ा भिखारी शायद रात की बची हुई खिचड़ी के इंतजार में धरना दिये बैठा है. मैं बारामदे के ड्रेसिंग टेबल की दिशा से आती दीदी के गुनगुनाने की आवाज से अंदाज लगाता हूं कि अभी सवा आठ के बीच का वक्त होगा. पौने नौ बजे दीदी घर से निकल जाती है. कमरे से बाहर आ मैं बुड्ढे की नजरों से भरसक बचते हुए सीधा दनादन सीढ़ियां उतरकर संडास की तरफ बढ़ने को होता हूं कि पीछे रसाईघर से प्रेशर कुकर की सीटी के सहवाद्य सहित मां की आवाज

"दिखा दूंगा! . . . दिखा दूंगा. . . ! एक दिन सबको दिखा दूंगा. . ." मन-ही-मन बुदबुदाता हुआ मैं बालों में कंघी फिराते-फिराते रसोईघर के सामने रखे टेबल तक आता हूं तो दीदी अपनी थाली का 'माछ-मात' साफ कर चटनी चाटती हुई मिलती है. बाकी की टेबल पर मां ने इस्त्री के लिए कपड़े फैला रखे हैं. हमारे घर में यह टेबल खाने के अलावा पढ़ने, चावल बीनने और कपड़े स्त्री करने के काम भी आता है.

सर्दियों से पहले मां इस पर खड़ी होकर ऊपर के खाने से रजाइयों का ट्रंक भी उतारती है.

"नेम दि फर्नीचर इन योर हाउस!" दोपहर के वक्त मुझे पार्ट-टाइम अंग्रेजी सिखानेवाले बुड्ढे के दोस्त ने कल मुझसे सवाल किया था और मैं बमुश्किल 'टेबल', 'चेयर' और 'बेड' का का नाम लेकर अटक गया था. "व्हॉट काइंड ऑफ टेबल?" बुड्ढे का दोस्त, जिसे मैंने 'मिस्टर कूचकवाच' (मिस्टर कवायद) की उपाधि दे रखी थी, गरजा था, तो मैं मन ही मन खीझकर चुप रह गया था. "अबे बुड्ढे, टेबल मतलब टेबल!" मैं कहना चाहता था, लेकिन 'मिस्टर कूचकवाच' तब तक 'पास्ट पार्टिसिपल' और उसके भेद समझाने के लिए माथामारी करने लगा था. यह उसका रोज का शगल था. एक चीज पढ़ाते-पढ़ाते अचानक दूसरी चीज पर सवाल करने लगता था और फिर जब मैं जवाब नहीं दे पाता था तो वह बुड्ढे से शिकायत करता था कि जो इस लड़के को अंग्रेजी सिखा दे, उसे पद्मश्री की उपाधि मिलनी चाहिए.

"क्यों रे देबू, खायेगा तू भी माछ-मात? लाऊं?" मां

राजनीति, समाज अथवा परिवार, इनमें से किसके चलते हमारे अधिकांश युवा, वे काम नहीं कर पाते जो वे वास्तव में करना चाहते हैं? भारतीय जनजीवन की इस त्रासदी और बेरोजगारी के संत्रास को रेखांकित करती कहानी कि घर-परिवार और समाज के बीच रिटायर होते बाप के बेटों के सपनों का अंजाम क्या से क्या होता जा रहा है? .....

गूंजती है, "हो गया वक्त खोखा बाबू के उठने का?"

"और क्या होगा!" एकतल्ले के बारामदे से अखबार पढ़ते-पढ़ते बुड्ढा जुगलबंदी मिलाता है, "आधी-आधी रात तक 'पाड़े' के आवारागर्द लड़कों के साथ सिनेमा-कहानी की गप्पें मारेगा तो सुबह क्या खाक जल्दी उठेगा! . . . सूअर कोथाकार. . ."

एक तरह से इस घर में मेरे लिए सौ मुसीबतें हैं, बुड्ढा समझता है कि मैं बाईस को पार कर चुका हूं, मुझे जल्दी से काम-धंधा ढूंढकर ठिकाने लगना चाहिए. मां का खयाल है कि अभी कुछ ही दिन तो हुए मेरे दूध के दांत टूटे हैं और दुनियादारी की समझ आने में मुझे अभी काफी वक्त लगेगा. दीदी अब भी हर छोटे-बड़े काम के लिए मुझे यहां से वहां दौड़ा देने को अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझती है. और इन तीनों का मत है कि मुझ पर जो फुटबॉल का भूत सवार है, वही मेरे पतन का असली कारण है.

स्टोव को हवा से बचाते हुए बिना मेरी ओर देखे पूछती है.

मैं अरुचि से मुंह बिचकाता हूं, "ऊंह! सुबह-सुबह मागुर माछ और भात!"

"पेट और दिमाग के लिए कितना फायदेमंद है, मालूम भी है? दीदी कुर्सी से उठते-उठते नसीहत देती है."

"तुम्हीं फायदा करो अपने पेट और दिमाग का!" मैं दीदी का रास्ता रोक कर उसे नचाता हूं, "यहां तो टांगें मजबूत होनी चाहिए. . . इधर से डिब्ल, उधर से कटाया, वह बैक पास दिया, यह लांग पास और ये . . . गोऽऽल!"

"बस फुटबॉल ही खेलते रहना जिंदगी भर!" सीढ़ियों से नीचे उतरता बुड्ढा मेरी बाजीगरी देखकर चिल्लाता है, "पढ़ना-लिखना माथामुंड और आवारागर्दी सारा दिन. ."

मैं खिसियाकर एक तरफ होता हूं तो दीदी मुंह दबाकर शरारत से हंसती है. शाम को इस चुड़ैल से बदला निकाला जायेगा, मैं फैसला करता हूं और रसाईघर से आनेवाले गर्म-

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्म टोस्ट के इंतजार में कुर्सी पर बैठकर टेबल को तबले की तरह बजाने लगता हूं.

इस घर में वक्त पर हर काम करने की सबसे ज्यादा नसीहतें मुझे मिलती हैं, हालांकि मुझसे ज्यादा इन नसीहतों की जरूरत बुड्ढे को है जो दस बजे शुरू होनेवाले दफ्तर के लिए सवा दस बजे खिरामां-खिरामां पान चबाते हुए घर से निकलता है. इसे कहते हैं, सरकारी दफ्तर में काम करने का सुख. यूं भी अगली जून में बुड्ढा कानूनी तौर पर रिटायर हो जायेगा. इस रिटायरमेंट के साथ ही मेरे लिए डांट का फारमूला नं. 44 जुड़ा हुआ है, "रजनी हाथ पीले करके अपने घर चली जायेगी. मेरी नौकरी अगली जून तक है. फिर उसके बाद क्या दादू मोशाय मेरी पेंशन के आसरे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे?"

मेरी जगह इस घर में कोई कच्चे दिल का होता तो अब तक जरूर आत्मग्लानि के मारे धतूरा खाकर मर गया होता. लेकिन मैं दूसरी मिट्टी का बना हूं 'डकबैक' जिसे अंग्रेजी में कहते हैं. मेरे लिए इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले बुड्ढे के जिगरी दोस्त 'मिस्टर कूचकवाच' ने किया था जो पिछले दो वर्षों से मुझे बहादुरी के साथ अंग्रेजी पढ़ा रहा है. आज भी बिना नागा वह हर शाम मेरी अंग्रेजी संबंधी नाकाबिलियत का कच्चा चिट्ठा बुड्ढे तक पहुंचाता है और साथ ही यह चेतावनी भी जोड़ देता है कि जब तक मैं अपनी अंग्रेजी नहीं सुधारूंगा, मुझे नौकरी नहीं मिलेगी.

इन सारे मसलों को लेकर अपनी दिमागी सोच को मैंने दो खानों में बांट रखा है. एक नंबर के खाने में वे सारे मसले हैं जिन्हें मैं 'दुनिया से कैसे निपटा जाये' प्रश्न के उत्तर के अंतर्गत डाल सकता हूं. दो नंबर का खाना मेरी अपनी निजी चिंताओं का खाना है जिसमें मैं 'आज की युवा पीढ़ी और ए-डिविजन फुटबॉल लीग' तथा 'मोड़ की दोतल्ला बाड़ी में रहनेवाली केया चौधरी का दिल जीतने के उपाय' जैसे ज्वलंत प्रश्नों की धारावाहिक व्याख्या करता हूं. इसके अलावा कुछ फुटकर मसले हैं जैसे 'पैसे की तात्कालिक और मासिक तंगी' या 'एलोरा सिनेमा में लगी नयी बंगला फिल्म को देखने की सबसे उपयुक्त तारीख' इनसे मैं 'पेंडिंग'वाले तीसरे खाने के अंतर्गत निपटता हूं.

कभी-कभी तीन नंबर और एक नंबर के खाने की समस्याएं जुड़ जाती हैं. उदाहरण के तौर पर सुबह दस बजे के आसपास जब मेरा घर से निकलने का वक्त होता है तो एक नंबर के विभाग में पहला प्रश्न यह होता है कि बुड्ढे की प्रातःकालीन डांट के आखिरी हिस्से से कैसे बचा जाये, जबकि तीन नंबर के पेंडिंग खाने में यह प्रश्न प्राथमिकता ले लेता है कि सारे दिन की व्यस्त गतिविधियों के लिए पैसे का जुगाड़ कहां से किया जाये! ऐसे में मां एक नंबर और तीन नंबर के बीच पुल की-सी भूमिका निभाती है. खाने की मेज पर चावल भकोस रहे बुड्ढे से वह बस भाड़े और बाजार से लाये जानेवाले सामान के नाम पर तीन रुपये ऐंठ लेती है और फिर नोट मेरे हाथ में थमाते हुए विश्वसनीय ढंग से डांट लगाती है, "दालचीनी लाना अगर भूला शाम को, तो भीतर घुसने नहीं दूंगी. . ."

हमारा पूरा मुहल्ला मोहन बगान का समर्थक है. मोहन बगान यानी बंगाल की 'खांटी' फुटबॉल टीम. हमारे मुकाबले ईस्ट बंगालवाले ज्यादा लड़ाकू और हल्ला मचानेवाले हैं. जब भी ईस्ट बंगाल की टीम जीतती है, मोड़ के उस पार उनके 'पाड़े' में यहां से वहां तक क्लब की झंडियां लहराती हैं, लाउडस्पीकर पर 'भांय-भांय' किशोर कुमार के गाने बजते हैं और नाच-गाने के साथ रिफ्यूजी छोकरे ढोल-नगाड़े बजाते हैं, बम छोड़ते हैं. इस बार मोहन बगान के गोलकीपर शिवाजी बैनर्जी के रहते इन ढाल-नगाड़ों की नौबत नहीं आयी है, और जबसे 'मोहम्मडन' के खिलाफ ईस्ट बंगाल ने प्वाइंट गंवाया है, तब से तो उनके 'पाड़े' में जैसे मातम छाया रहता है. कहां इस बार की यह मरियल हालत और कहां वह पिछले साल का हंगामा जब ईस्ट बंगाल के हर मैच जीतने के साथ ही बाजार में हिलसा मछली का भाव दुगुना हो जाता था. हिलसा यानी ईस्ट बंगाल का 'ट्रेड मार्क', जैसे मोहन बगान का ट्रेड मार्क 'चिंगड़ी' (झींगा मछली) है.

मैं हिसाब लगाता हूं कि साठ पैसे की टिकट की लाइन में लगने के लिए कम से कम दो घंटे पहले ग्राउंड पर पहुंचना जरूरी होगा, बशर्ते मेरा दोस्त मन्ना अपना 'सोर्स' इस्तेमाल करने में कामयाब हो जाये. इस सारी दौड़भाग के लिए बाकी बातों के अलावा 'मिस्टर कूचकवाच' से छुट्टी झाड़नी पड़ेगी.

जहां मैं टाइपिंग प्रैक्टिस के लिए जाता हूं, वहां मेरे अलावा दो और लड़कियां आती हैं, जिनकी अंग्रेजी मुझसे

प्रजापति की फरियाद

▣ कमल शुक्ल

उस साल सूखा पड़ा तो राजा का हाथी गांव-गांव घूमा. प्रजा ने फरियाद की, राजा ने फरियाद सुनी और किसानों के लगान माफ हो गये. बदले में प्रजा ने राजा की जय-जयकार की.

दूसरे साल खूब पानी गिरा, नदी में बाढ़ आ गयी. लोगों के घर पानी में बह गये. प्रजा तबाह हो गयी, राजा का हाथी फिर गांव-गांव घूमा. प्रजा ने फरियाद की, राजा ने फरियाद सुनी और तमाम कर माफ हो गये. प्रजा ने फिर राजा की जय-जयकार की.

तीसरे साल नदी पर एक बांध बन गया. लोग सुखी हो गये. न सूखे का डर रहा, न बाढ़ का. राजा का हाथी फिर गांव-गांव घूमा. लोगों ने बधाई दी, राजा ने बधाई स्वीकार की. लोगों ने फिर राजा की जय-जयकार की.

चौथे साल न सूखा पड़ा, न बाढ़ आयी, फिर भी राजा की मोटर गांव-गांव घूमी. इस बार राजा ने फरियाद की, प्रजा ने फरियाद सुनी. और राजा चुनाव जीत गया. प्रजा ने फिर राजा की जय-जयकार की.

पांचवे साल नये कर लग गये. प्रजा बोझ से दब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यी. प्रजा कुछ कहने भी ना पायी थी कि बांध टूट गया. गांव के गांव पानी में बह गये. लोग त्राहि-त्राहि कर उठे.

इस बार न राजा आया, न राजा का हाथी और न राजा की मोटर, बल्कि राजा का कारिंदा आया. उसने राजा का पैगाम सुनाया, "इस बार राजा आने में असमर्थ है क्योंकि काम-काज में बहुत व्यस्त है." प्रजा के हाथ फरियाद के लिए उठे के उठे रह गये.

फिर वहां न कभी राजा आया, न राजा का हाथी और न राजा की मोटर. बस, वक्त-बेवक्त राजा के कारिंदे प्रजा में कुछ नारे, कुछ पोस्टर और कुछ आश्वासन बांट जाते, जिसे लोग मुंह बाये देखते रह जाते. . . .

. . . और अब वे लोग राजा के किस्से अपने बच्चों को सुनाते हैं, जिन्हें सुनकर बच्चे सहम जाते हैं, फिर प्रश्नचिन्ह के आकार में खड़े होकर एक साथ पूछते है, "क्या हमारा राजा पोस्टर है?"

लोग चुप हैं, क्या जवाब दें. . . क्योंकि राजा, काम में व्यस्त है. □

● 1-वंदना, एवां रोड, अल्मेडा पार्क, बांद्रा, बंबई-440050

भी बदतर है. हम तीनों में आपस में होड़ रहती है कि कौन पहले आकर गोदरेज ए-वी. को हथियाता है. बाकी दोनों टाइपराइटर कम से कम तीस साल पुराने हैं और उनके बटनों को दबाते हुए महसूस होता है कि हम किसी खटारा गाड़ी का इंजन स्टार्ट कर रहे हैं.

'भौमिक कर्मशियल सेंटर' के पास पहुंचते-पहुंचते मुझे दूर से ही दोनों बीच की टेबलों पर झुकी अल्पना और स्वप्ना की आकृतियां साफ दिखायी दे जाती हैं. बोझिल कदमों से मैं तीसरे टाइपराइटर के आगे रखी कुर्सी की ओर बढ़ता हूं तो टाइपराइटर के बगल में पड़ा मिठाई का डिब्बा मेरा ध्यान आकर्षित करता है. एक अदद मरियल संदेश, एक मीठा सिंघाड़ा और बासी काला जाम.

"यह क्या है?" मैं कुछ सतर्क होकर प्रश्न करता हूं."

"मेरी तरफ से है!" स्वप्ना मुझे देखकर दरियादिली से मुस्कराती है, "मुझे ईस्टर्न ट्रेडिंग में टाइपिस्ट-क्लर्क की नौकरी मिल गयी है. अगले सोमवार से. . ."

मैं अपनी हार्दिक शुभेच्छाएं स्वप्ना को पेश करता हूं, लेकिन मन में ताज्जुब होता है कि जिस लड़की को 'टाइपिस्ट-क्लर्क' की स्पेलिंग तक नहीं आती, उसे यह नौकरी कैसे मिल गयी! शायद इस लिए कि स्वप्ना शक्ल-सूरत से बुरी नहीं है. मुमकिन है कि अपनी नाकाबलियत को उसे इस नौकरी में दूसरी चीजों से भरना पड़े. मैं सोच तो जाता हूं, लेकिन फिर मुझे अपने ईर्ष्यालु दिमाग पर शर्म आती है.

"देबू दा, एक दिन मुझे भी अपने साथ फुटबॉल दिखाने ले चलो न!" उभरे हुए दांत और बड़ी-बड़ी आंखोंवाली अल्पना कम से कम पचास बार मुझसे कह चुकी होगी, लेकिन मेरा अल्पना को लेकर फुटबॉल मैच देखने जाने का सवाल ही नहीं उठता. 'देबू दा' संबोधन में नितांत पालतू किस्म का भ्रातृभाव झलकता है, परंतु छियत्तर नंबर की भीड़ भरी बस में जब भी अल्पना मेरे साथ ठाकुरपुर की तरफ जाती है, उसका भरा हुआ जिस्म मुझसे एकदम सट जाता है. मैं ऐसे तमाम मौकों पर पूरी तरह से असंपृक्त होकर यथासंभव एक तरफ खिसक जाता हूं. एक तो अल्पना का घामड़ चेहरा मेरे भीतर खालिस भाईचारा तक नहीं जगाता, और दूसरे बहुत पहले ही मैं अपना मन, शरीर और आत्मा घर के मोड़ की दोतल्ला 'वाड़ी' में रहनेवाली केया चौधरी को समर्पित कर चुका हूं.

फुटबॉल मैच खत्म होते ही मैं आर्यन स्पोर्टिंग के दुलाल बाबू की ओर भागूंगा. अगले सीजन की ए-डिवीजन टीम के चुनाव के सिलसिले में उन्होंने शाम को मिलने के लिए कहा है. मेरी आंखों के सामने देवाशिष सेनगुप्ता अभिनीत सुबह की रंगीन फिल्म का खुशनुमा ट्रेलर फिर से तैरने लगता है. टाइप किये हुए शब्द खुद-ब-खुद धुंधले होते हुए धीरे-धीरे गायब हो जाते हैं. . .स्टेडियम की भीड़ ने अब लयबद्ध तरीके से मेरा नाम लेना शुरु कर दिया है. इसी स्टेडियम की दोतल्ले की बालकनी पर मैं केया चौधरी को खड़े हाथ हिलाते देखता हूं. उसके होठों पर एक जादू भरी मुस्कराहट है. . .

आम-तौर पर मैं साढ़े ग्यारह बजे कर्मशियल इंस्टीट्यूट से निकल आता हूं. जिस दिन एक बजे तक मैं घर न पहुंचूं, मां घर से नीचे उतरकर मनिहारी की दुकान से कर्मशियल इंस्टीट्यूट फोन करती है. घर में एक मां ही है जिसे मेरे बाहर निकलते ही चिंता होनी शुरू हो जाती है कि मैं कहीं किसी दुर्घटना का शिकार न हो जाऊं या मेरा किसी से झगड़ा न हो जाये या मुझ पर अचानक बिजली न गिर पड़े. सौभाग्यवश ऐसा आज तक नहीं हुआ है, लेकिन मां की चिंता का खयाल करके मैं इंस्टीट्यूट से निकलने के बाद मामूली आवारागर्दी संपन्न कर सीधा घर की बस पकड़ता हूं. यह और बात है कि एक बजे तक मुझे खासी भूख भी लग जाती है.

इंस्टीट्यूट के बाहर मुख्य सड़क पर कुछ आगे जाकर ट्राम लाइन के उस ओर फटीचर सिनेमा हॉल है. यहां दो-तीन हफ्ते के बाद जब भी पिक्चर बदलती है, गली-मुहल्ले के तमाम फुर्सतशुदा लड़के इसके चारों तरफ यहां-वहां छितरे हुए मिलते हैं. दो-तीन 'पेटेंट' मुड़ी और आलू चॉपवाले हैं, जो हर फिल्म की विस्तृत और भरोसेमंद समीक्षा यथा-आवश्यकता ग्राहकों को पेश करते हैं. 'कुली' में अमिताभ एकदम 'बिच्छिरी' (रद्दी) दिखायी देता है, 'मशाल' की स्टोरी कंडम है मगर अनिल कपूर ने आयी शबाश, वह काम दिखाया है कि दिलीप कुमार को आउट कर दिया है और 'दादा बाबू' एई बोई टा देखबेन ना, डाकुमेंटरी थेके ओ बाजे!' (यह फिल्म मत देखिए, डाक्यूमेंटरी से भी बुरी है).

मैं यूंही गश्त लगाने के अंदाज में इंस्टीट्यूट से सिनेमा

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हॉल की तरफ निकल आता हूं, कुछ घटी दरों पर लगी पुरानी बंगला फिल्म के बारे में पता लगाने की गरज से, और कुछ अल्पना के मन में यह जरूरी गलतफहमी पैदा करने के इरादे से कि मैं किसी दूसरी लड़की के साथ नून शो में पिक्चर देखने जा रहा हूं. अल्पना मोटे तौर पर कई बार मेरे साथ सिनेमा हॉल की तरफ चलने की तत्परता जाहिर कर चुकी है, लेकिन कड़ी मेहनत के बाद मां से हासिल किये गये तीन रुपयों को एक घामड़ लड़की के साथ पुरानी बंगला फिल्म देखने पर खर्च कर देने का खयाल मेरे मन में गहरी विरक्ति पैदा करता है. माना कि फिल्म में सौमित्र और अपर्णा हैं, लेकिन फुटबॉल से बड़ा कोई काम नहीं, जो इन रुपयों से किया जा सके.

दरियादिली से पचीस पैसे की 'झाल-मुड़ी' बनवाकर मैं पूरी भीड़ का एक सर्वेक्षणात्मक चक्कर लगाता हूं, फिर कुछ ऊब के साथ शो-विंडो में लगी तस्वीरों का जायजा लेने लगता हूं. अगले हफ्ते से 'आल राउंडर' लग रही है. कांच की खिड़की के पास कॉलेज से भागी दो लड़कियां खड़ी कुमार गौरव की लड़कीनुमा अदाओं पर कुर्बान जा रही हैं. पांचू पानवाले की दुकान के पास मैं दो-तीन ब्लैकियों को छुट्टी मनाते हुए देखता हूं. कांच के उस पार मेरी नजर दुबारा स्टेडियम में क्रिकेट बैट से छक्का लगाते कुमार गौरव पर पड़ी है, तो मेरा अपना व्यक्तिगत सपना दुबारा जिंदा होने लगता है. "तुम इतना बढ़िया बैक-पास कैसे कर लेते हो?" केया चौधरी पूनम ढिल्लो की तरह मेरे चेहरे को अपनी हथेलियों में कैद कर पूछ रही है. "यह तो कुछ भी नहीं," मैं उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में झांककर कहता हूं, "तुम यूंही मुझे देखकर मुस्कराती रहो तो मैं इससे भी बढ़िया बैक-पास कर सकता हूं!"

घर पहुंचकर मां को कमर्शियल इंस्टीट्यूट की पूरी दिन-चर्या बताते समय मैं स्वप्ना की नौकरीवाले मसले को सावधानी से गोल कर जाता हूं. मां ने 'मागुर-माछ' के प्रति मेरी अरुचि को मद्देनजर रखते हुए खास मेरे लिए 'आलू भाजा' बनाया. 'आलू भाजा' मेरी कमजोरी है और घरेलू हौसले को कायम रखने के लिए मैं मां को यह बताना नहीं भूलता कि उसके जैसा 'आलू भाजा' दुनिया में कोई नहीं बना सकता. मां मेरी बगल में बैठ मुझे खाते हुए देखकर आत्मिक तृप्ति महसूस करती है और मौका देखकर मेरे सबसे कमज़ोर क्षण में धीरे-से कहती है, "रे देबू, तू क्यों नहीं किसी काम-नौकरी में लग जाता. इस फुटबॉल में क्या रखा है. तेरे बाबा हर वक्त तेरी चिंता में डूबे रहते हैं . . ."

'आलू भाजा' मेरे मुंह में जैसे कोयला हो जाता है.

"हुंह!" मैं मुंह पोंछता हुआ उठ खड़ा होता हूं, "हर आदमी मेरी फुटबाल के पीछे हाथ धोकर पड़ा रहता है. जिस दिन डिवीजन में खेलने लगूंगा न, उस दिन मेरी कमाई को समझेंगे सब. . .कि फुटबॉल में कितना पैसा है. आज मिल लूं दुलाल बाबू से, फिर. . ."

मां दुहाई देती रह जाती है कि अरे, खाना तो अच्छी तरह खा ले, किंतु मैं एक बार उठ गया, सो उठ गया. यह और बात है कि उठने से पहले ही मैं भर-पेट खा चुका था. एक झटके के साथ किताबें और कापियां समेटकर मैं शीशे में अपने बालों की जमावट चेक करता हूं और उसके बाद दनदनाता हुआ घर से बाहर निकल जाता हूं.

घड़ी में अभी एक-चालीस . . .पौने दो का वक्त होगा. 'मिस्टर कूचकवाच' से मिलने के लिए तीन बजे का वक्त तय है. लेकिन जिस दिन मेरा जल्दी छूटकर फुटबाल मैच देखने का इरादा होता है, उस दिन वक्त से पहले पहुंच जाना ही मुफीद होता है. 'मिस्टर कूचकवाच' की घड़ी हमेशा बंद रहती है और इस आधार पर उन्हें आधा घंटा इधर या उधर के बारे में पता ही नहीं लगता.

गली के मोड़ पर दूर से ही मुझे दोतल्ले पर केया बालों में कंघी करती दिखायी दे जाती है और मेरा दिल जैसे 'ड्रिब्लिंग' करते-करते अचानक रुक जाता है. ऊपर केया की ओर देखने की कोशिश में सूरज सीधा मेरी आंखों में चिलचिलाता है. पास पहुंचकर कनखियों से ऊपर दोतल्ले की ओर देखते हुए मैं मुस्कराने की कोशिश करता हूं, लेकिन मुस्कराहट होंठों पर ही जम जाती है. केया चौधरी मेरी ओर देखकर धीमे-से हंसती है, पता नहीं प्यार से या व्यंग्य से, और फिर झटके के साथ घूमकर परदा हटाती हुई घर के भीतर चली जाती है. मेरे दिल को दुबारा 'ड्रिब्लिंग' शुरू करने में जैसे सदियों का वक्त लगता है. इस बीच दो-तीन बार मुड़कर मैं दोतल्ला 'बाड़ी' की ओर देखता हूं, लेकिन केया दुबारा बाल्कनी में नहीं आती.

राह चलते अजनबी से वक्त पूछकर ठीक सवा दो बजे आहिस्ता-से 'मिस्टर कूचकवाच' के घर की सांकल खट-खटाता हूं तो उम्मीद के मुताबिक उनकी पत्नी दरवाजा खोलती है. उनके कुछ भी कह सकने से पहले ही मैं अधभिड़े दरवाजे से भीतर अंधेरे कमरे में आ जाता हूं. "सो रहे हैं?" श्रीमती कूचकवाच भीतर की ओर इशारा कर दबे स्वर में बताती है, तो मेरी सांस-में-सांस आती है. ढाई-पौने तीन बजे तक बुड्ढा तबीयत से खर्राटे मारकर सोता है.

"अच्छा?" नकली आश्चर्य व्यक्त करते हुए मैं कमरे के भीतर बेचैनी से इधर-उधर टहलता हूं, फिर एक-एक शब्द तौलते हुए काफी व्यस्तता से बोलता हूं, "इंतजार करूं?"

"मुझे क्या मालूम!" कूचकवाचिन असंपृक्त है,

"अच्छा. . ." मैं असमंजस में विनम्रता घोलते हुए कहता हूं, "दादू को नींद से मत जगाइए अभी. . .बस जब उठें, कह दीजिएगा मैं आया था. ठीक?"

श्रीमती कूचकवाच गर्दन हिलाकर उठ खड़ी होती हैं. मैं यथासंभव सहज बनते हुए धीरे-से, बिना आवाज किये दरवाजे से बाहर निकल आता हूं. लेकिन जैसे ही पीठ पीछे दरवाजा बंद होता है, मैं सरपट मोहनबागान ग्राउंड की ओर भागता हूं, जैसे मेरे पीछे किसी ने कुत्ते लगाए हुए हों.

फुटबाल ग्राउंड के बाहर रेड रोडवाली तरफ हजारों की भीड़ के बीच घुड़सवार पुलिस 'फुटानी' झाड़ती हुई मिलती है. पुलिस के घोड़े, जो खिरामां-खिरामां चलते हैं, लीद करते हैं और उकसाये जाने पर अचानक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बगटुट दौड़ने लगते हैं. मन्ना ने गोलचक्कर के आगेवाले तिरछे पीपल के पेड़ के नीचे मिलने को कहा था. मैं दो बार पेड़ का चक्कर लगाता हूं, लेकिन मन्ना कहीं दिखायी नहीं देता. टिकट की लाइन अभी से शहीद मीनार तक पहुंचने की धमकी देने लगी है. मैं कुछ खीझकर इधर-उधर देखता हूं और अकेले चल निकलने का प्रोग्राम बनाता हूं कि तभी मन्ना दिखायी दे जाता है, कुल्फी-मलाईवाले से कुल्फी खरीदता हुआ, साला! मैं उसे हाथ के इशारे से बुलाता हूं तो वह इतमीनान से चलता हुआ आता है. मेरी हड़बड़ी में उसका हिस्सा नहीं है.

"अबे घबरा मत कालिया!" वह कहता है, "मोहन बागान ग्राउंड तो अपने बाप का घर है!"

जब से फुटबाल मैदान पर दंगे-फसाद में दर्शक मारे जाने शुरू हुए हैं, तब से कलकत्ता पुलिस जरा सख्त हो गयी है. सोडावाटर की बोतलें, चाकू, छुरियां वगैरह मैदान में ले जाना मना है. वरना कुछ साल पहले ग्राउंड के बाहर पचास-पचास पैसे में फेंकने के लिए इकट्ठे किये गये पत्थरों के पैकेट धड़ल्ले से बिकते थे. कुछ रंगीले नौजवान अब भी चोरी-छिपे यह सब सामान मैदान में ले जाते हैं, लेकिन पहलेवाली बात नहीं रही.

पूरे मैच के दौरान मेरा ध्यान खेल की ओर कम और दुलाल बाबू से होनेवाली संभावित बातचीत की तरफ ज्यादा रहता है. दुलाल बाबू दो-तीन बार हमारा प्रैक्टिस गेम देख चुके हैं. टालीगंज के विरुद्ध जो बी-डिवीजन मैच हमारे क्लब ने जीता था, उसमें भी दुलाल बाबू मौजूद थे. लेकिन डिवीजन में जगह पाने के लिए, सुनते हैं, खेल के अलावा सोर्स की भी जरूरत होती है. देखा जायेगा!

हाफ टाइम तक एक भी गोल नहीं होता तो मैदान में 'मारा-मारी' के पूरे असार साफ दिखायी देने लगते हैं. ईस्ट बंगालवाले ब्लॉक में दर्शकों ने कमीजें उतार-उतारकर हवा में लहरानी शुरू कर दी हैं. इस भीड़ में अगर कोई मोहन बगानावाला फंस जाये तो उसकी शामत है. अब बॉल के हर झटके के साथ पूरे मैदान में गालियां और चीखों का शोर उभरने लगा है. वैसे यह बेचैनी और झल्लाहट अब खिलाड़ियों पर भी उतरती जा रही है. "दुर साला!" मोहन बगान का पक्का समर्थक मन्ना मेरी जांघ पर हाथ मारकर कहता है, "ये लोग पैसे खाकर खेल रहे हैं!"

मैदान के एक कोने से पहले छिटपुट पथराव शुरू होता है, फिर शीशियां-बोतलें बरसनी शुरू होती हैं और फिर साइडलाइन के बाहर पुलिस यहां से वहां तेजी से भागना शुरू कर देती है. खेल खत्म होने में अब कुछ ही मिनटों की देर है. मैं चतुराई से बाल कटाते शुरोजित सेनगुप्ता की आकृति में अपने-आपको ढूंढने की कोशिश करता हूं, लेकिन सुबह का वह सपना उस बदहवास भीड़ के बीच जिंदा नहीं होता.

रेफरी की आखिरी सीटी के साथ सामने के ईस्ट बंगालवाले स्टैंड से बेंचों के टूटने की आवाज आती है और पागल भीड़ का एक भारी जत्था चीखता-चिल्लाता मैदान पर उतर आता है. एक वक्त था जब मैं और मन्ना भी इस भीड़ का हिस्सा होते थे. लेकिन अब नहीं. पुलिस घेरा बनाकर ईस्ट

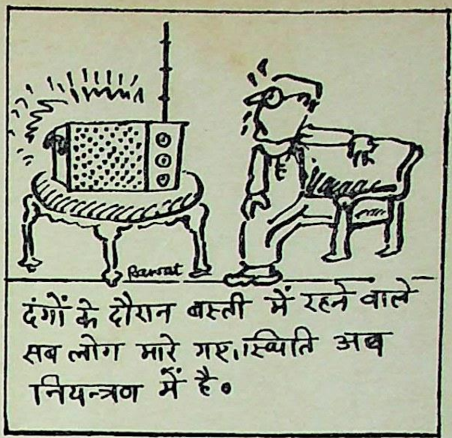

● व्यंग्यचित्र
—बलबीर सिंह रावत

बंगाल के खिलाड़ियों को मैदान से बाहर ले जा रही है. यहां से वहां तक भीड़ में गोल न कर सकनेवाले खिलाड़ियों के लिए भरपूर गालियां हैं. बमुश्किल गुस्सा दबाते हुए हम मैदान से बाहर आते हैं तो वही घुड़सवार पुलिस हमें खामख्वाह दौड़ाना शुरू कर देती है. पथराव के जोश में रेड रोड से गुजरती न जाने कितनी गाड़ियों के शीशे टूट चुके हैं. "भागो! भागो!! दुर साला!" मन्ना दुबारा खीझकर अपनी चप्पलें हाथ में ले लेता है और हम बदहवास दौड़ते हुए मैदान पार कर चौरंगी की ओर निकल आते हैं...

एक अजीब-सा खालीपन लिये मैं अपने-आपको बंद गली के सिरे पर स्थित उस छोटे-से केबिन के सामने पाता हूं जिसके भीतर दुलाल बाबू बैठते हैं. चपरासी से पूछने पर पता चलता है कि वह अभी आये नहीं. "आयेंगे?" मैं कुछ शंकित होकर उससे प्रश्न करता हूं. उत्तर में वह कंधे उचकाकर विचित्र-सी मुद्रा में हाथ हिलाता है, जिसका मतलब 'हां' से 'ना' तक कुछ भी हो सकता है.

मैं 'खेलार आसर' की घिसी हुई प्रति लेकर वहीं बैठ जाता हूं.

बैठे-बैठे मेरी आंखों के सामने जादूगर की तरह फुटबाल को यहां से वहां तक नचाते शुरोजित सेनगुप्ता की आकृति जिंदा हो उठती है...और कमेंटेटर अजय बोस की आवाज के सहारे पलक झपकते ही शुरोजित सेनगुप्ता की जगह देवाशिष फुटबॉल को यहां से वहां कटाने लगता है. उसकी शैली पर पेले की निश्चित छाप है, उसकी फारवर्ड पासिंग अर्जेंटीना के खेल की याद दिलाती है—अजय बोस अपनी धुआंधार बंगला में बोले चला जा रहा है. मैं कनपटी के ऊपर कुछ उत्तेजना-सी महसूस करता हूं. "वी वांट देवाशिष!... वी वांट देवाशिष!!" स्टेडियम की भीड़ ने दुबारा लयबद्ध ढंग से शोर मचाना शुरू कर दिया है. मेरी आंखें उस भीड़ में केया चौधरी की छरहरी आकृति को ढूंढने की कोशिश में छोटी होती चली जाती हैं...

पृष्ठ 61 पर जारी...

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-सेवा के लिए

▣ हरिशंकर परसाई

तुलसीदास दो-तीन दिन अखबारों में कोट व टाई पहने मुस्कराते हुए एक आदमी की फोटो देख रहा था और उसके संबंध में समाचार पढ़ रहा था, कि वे लायंस क्लब के 'डिस्ट्रिक्ट गवर्नर' हो गये हैं. मैंने एक भगत से पूछा कि भाई ये किस कारण से महत्वपूर्ण हो गये हैं? इन्होंने महत्वपूर्ण होने के लायक क्या किया है? उसने जबाब दिया—गोसांईजी, आप इस माया-रहस्य को नहीं समझेंगे आप संत हैं. मैंने कहा—भगत, संत तुम लोगों से अधिक चतुर व काईयां होता है. वह दुनिया के सारे दंद-फंद जानता है. संत सिर्फ आशीर्वाद देनेवाला उल्लू नहीं होता. तुम मुझे समझाओ.

भगत ने कहा—प्रभु, ये बड़े लोगों की संस्थाएं है, लायंस क्लब, रोटरी क्लब वगैरह. ये लोग डिस्ट्रिक्ट गवर्नर जैसे पदों को प्राप्त करने के लिए काफी रुपये खर्च कर देते हैं. मैंने कहा—अगर ये इतना धन खर्च करते हैं तो यह 'इन्वेस्टमेंट' (पूंजीनिवेश) हुआ इससे कई लाख कमाते होंगे. क्या जरिये हैं कमाने के? कौन से धंधे करते हैं डिस्ट्रिक्ट गवर्नर लोग? भगत ने कहा—यह तो मैं भी नहीं जानता. यह किसी ईमानदार लायन से ही पूछिए. मैं तो इतना समझता हूं कि इस पद से प्रतिष्ठा बढ़ती है. तुलसी ने कहा—भगत, यह प्रतिष्ठा किन लोगों में रहती है? डिस्ट्रिक्ट लायन के घर के सामने से निकलने वाले लोग क्या यहां रुककर नमन करते हैं? क्या आम लोग आपस में श्रद्धा-भाव से कहते हैं कि इस घर में लायन के डिस्ट्रिक्ट गवर्नर रहते हैं. साधारण आदमी नहीं जानते कि यह कैसा क्लब है और क्या करता है. उनकी इसमें बिल्कुल भी रुचि नहीं. वे इस बात की कतई परवाह नहीं करते कि कौन लायन है और कौन गवर्नर हो गया. नागपुर में एक गांधीवादी कानेटकरजी थे. वे सुबह नियमपूर्वक रेलवे स्टेशन जाते थे और झाड़ू लेकर प्लेटफार्म साफ करते थे. वे विद्वान आदमी थे. उनकी प्रतिष्ठा नागपुर भर में थी. हर आदमी उन्हें जानता था, उनका आदर करता था. उनकी प्रतिष्ठा पूरे महाराष्ट्र में थी. ये डिस्ट्रिक्ट गवर्नर जो हुए हैं तो इनकी प्रतिष्ठा कितने लोगों के बीच बढ़ी? भगत ने कहा—गोसांईजी, इनकी प्रतिष्ठा लायंस क्लब के सदस्यों के बीच में ही ही बढ़ी.

दूसरे दिन सिविल लाइन की सड़क पर तुलसी चल रहा था कि उसकी नजर छोटे से बंगले पर गयी. सामने ऊंचा फाटक लगा था जो बंद था. उस पर दो लकड़ी की तख्तियां लगी थीं. एक तख्ती पर अंग्रेजी में लिखा था 'लायन के. के. अग्रवाल' और दूसरी तख्ती पर अंग्रेजी में लिखा था 'बिवेयर आफ डॉग' मैंने सोचा कि साधारण आदमी इसे पढ़कर क्या अर्थ निकालेगा? यह अर्थ निकालेगा कि यहां कोई शेर रहता है जिसका नाम के. के. अग्रवाल है. मगर वह शेर बहुत डरपो[...] इसलिए उसने कोई भयंकर [...] पाल रखा है और इस तख्ती [...] लोगों को सावधान किया गया [...] शेर से कोई डर नहीं है, मगर [...] से सावधान रहो.

मैं सड़क पर खड़ा हो गया [...] साधु-वेश को देखकर कुत्ता [...] गेट तक आया और भौंकने [...] मैं खड़ा रहा. मैं कुत्ते के चरि[...] जानता हूं. मनुष्य के चरित्र को [...] में जरूर भूल हो जाती है. कुत्ता [...] को काटता है जो उस अहाते [...] रहा हो, जो उसका है. फाटक के [...] वाले को देखकर इसलिए भौं[...] कि वह आदमी फाटक में [...] कुत्ता फाटक से निकलकर स[...] जाते आदमी को नहीं काटता. [...] कुत्ते सड़क पर निकल[...] आदमी पर भौंकते हैं औ[...] कभी उसे काट भी लेते हैं. [...] की जाति में अपवाद होते हैं [...] नीति में मैंने ऐसे कई नेता [...] जब बहुत देर तक कुत्ता भौंक[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-सेवा के नाम पर चल रहे कारनामों पर बाबा तुलसीदास की नजर क्या पड़ी... वे तुरंत लायन के. के. अग्रवाल से जा भिड़े. अब एक तरफ लायन थे तो दूसरी तरफ बाबा. ऊपर से चमकनेवाली संस्कृति की पोल खुलनी थी सो खुलती ही चली गयी...

और मैं खड़ा रहा था तो अधेड़, उम्र के एक सज्जन फाटक तक आये, कुत्ते को चुप किया और मुझसे कहा—महाराज, आप क्यों यहां खड़े होकर हल्ला करवा रहे हैं. ये लीजिए रुपया और जाइए. उन्होंने एक रुपये का नोट मेरी तरफ बढ़ाया. मैंने कहा कि मुझे पैसा नहीं चाहिए. मुझे आपसे बात करनी है. उसने कहा—क्या बात करेंगे आप? कुंडली देखेंगे, हाथ देखेंगे. और भविष्य बतायेंगे. मुझे फुर्सत नहीं है. मैंने सोचा कि अंग्रेजी बोले बिना शेर दबेगा नहीं. मैंने कहा—आई डू नॉट बिलीव इन एस्ट्रालॉजी एंड पामिस्ट्री. दे आर अनसाइंटिफिक. इफ सम पंडित इज आलरेडी बिफूलिंग यू बाई फारकास्टिंग योर फ्यूचर स्टॉप बीइंग ए फूल, आल दो आई नो दैट इट इज व्हेरी डिफिकल्ट टू स्टाप बीइंग ए फूल, रादर मोर डिफिकल्ट दैन स्टार्ट बीइंग वाइज. अब लायन के.के. अग्रवाल ने आंखें फाड़कर मुझे देखा. फिर चश्मा उतारकर देखा. शेर एकदम नरम हो गया था. उन्होंने फाटक खोला और मुझसे कहा आइए.

मुझे उन्होंने बैठक में सोफे पर बिठाया. इतने में उनकी पत्नी आ गयी, जिनसे उन्होंने परिचय कराया-ये मेरी पत्नी हैं लायनेस कुमुदनी अग्रवाल. वे मोटे डील-डौल की बेडौल स्त्री थी. और उनका चेहरा देखकर लगता था कि ये जरूर लायनेस होंगी. लायन अग्रवाल ने पूछा—स्वामीजी आप हैं कौन? आप बहुत विचित्र मालूम होते हैं. मैंने अपना परिचय दिया. उन्होंने कहा—ठीक है ठीक है, मैं समझ गया मेरे फादर रोज आपकी रामायण पढ़ते थे. मैंने पूछा—आपने भी पढ़ी है. उन्होंने कहा—नहीं जी मैं तो इंग्लिश स्कूल और कालेज में पढ़ा. मैंने कहा-कोई बात नहीं, तो फिर अपने अंग्रेजी कविता पढ़ी होगी. मिल्टन की कविता की कुछ पंक्तियां सुनाइए. लायन ने कहा-आप, गलत नाम ले रहे हैं वह मिल्टन नहीं 'हिल्टन' है. 'हिल्टन इंटरनेशनल' होटलें दुनिया के बड़े-शहरों में हैं. पर इनकी कविता मुझे अभी याद नहीं है. किताब में देखकर बताऊंगा. मैंने कवियों की इज्जत बचाने के लिए कविता की बात यहीं खत्म कर दी और लायंस क्लब की बात शुरू कर दी. मैंने पूछा-ये लायंस क्लब क्या है और कहां-कहां है? लायंस क्लब क्या फ्रांस, जर्मनी, रूस, नार्वे, आदि में हैं, लायन ने मुझे समझाया.

मैंने कहा—बहुत अच्छी बात है कि आप लायन हैं. अग्रवाल खुश हुए बोले-स्वामीजी मैं 'टेल ट्विस्टर' भी हूं. और आपकी कृपा, और आपका आशीर्वाद हुआ तो 'बिस्कर पुलर' भी हो जाऊंगा. मैंने कहा—मैं जान गया कि आप अभी शेरों की दुम मरोड़ने वाले हैं और आगे शेर की मूंछ उखाड़ने वाले हो जायेंगे. ये आपके क्लब के के पद हैं. आपने कहा था कि मानव-सेवा के उद्देश्य से अंग्रेजों ने लायंस क्लब चालू किया. अंग्रेजों का तब आधी दुनिया में साम्राज्य था. वे अपने अधीन देशों को लूटते थे, वहां के निवासियों का शोषण करते थे. लाखों काले आदमियों को उन्होंने गुलाम बनाकर बेच दिया. वे गुलामों से अपने कारखानों और बड़े-बड़े खेतों में काम कराते थे और कोड़े मारते थे. गोलियों से उन्होंने इन देशों के लाखों आदमी मार डाले. इसी मानव-सेवा के लिए क्या उन्होंने लायंस क्लब खोले थे? फिर अपने अधीन देशों में आप जैसे लोगों से इस मानव-सेवा में सहयोग देने के लिए लायंस क्लब खुलवाये. इन देशों के ये साम्राज्य परस्त लायन अपने को प्रतिष्ठित मानते थे, जबकि वे अंग्रेजों की नजर में चूहे थे. अंग्रेजी साम्राज्य तो खत्म हो गया. लेकिन आप जानते हैं चूहे बड़ी मुश्किल से मरते हैं. चूहों को मारना लगभग असंभव है. तो आप लोगों ने समझा कि आपने अंग्रेजों की जगह ले ली. आप सचमुच शेर हो गये और साधारण आदमी आपके सामने चूहे हो गये. अब ये आपके घर में ही देखिए. आपने अंग्रेजी में तख्ती लटकायी है जिस पर लिखा है 'बिवेयर आफ डॉग' हिंदी में तख्ती नहीं लटकायी जिस पर लिखा हो-'कुत्ते से सावधान.' इसका मतलब है कि आप अंग्रेजी जानने-वाले को ही आदमी समझते हैं. और उस आदमी को आप कुत्ते से बचाना चाहते हैं, क्योंकि आप मानव-सेवा करते हैं. मगर अंग्रेजी न जाननेवाले को आप बकरी या गाय समझते हैं.

शेर का चेहरा तमतमा उठा, उसने कहा-ये सिविल लाइंस है. मैंने कहा जी हां, इसीलिए आप लोगों का व्यवहार 'अनसिविल' है. देखिए अंग्रेजी साम्राज्य से मुक्त होने के बाद भी सारे देशों में ये लायंस क्लब चलते हैं. आप शेरों का व्यवहार साधारण मनुष्य के साथ वैसा ही है, जैसा अंग्रेजों का था. अब अमेरिका की बात लीजिए. दूसरे महायुद्ध के बाद ब्रिटेन तो बहुत कमजोर देश हो गया था. उसका साम्राज्य चला गया था. लायंस क्लब आप कहते हैं, अमेरिका में भी है, क्योंकि वे भी मानव-सेवा के लिए समर्पित हैं. अब इनकी मानव-सेवा को देख लीजिए. अमरीकी बहुराष्ट्रीय कंपनियां विकासशील और गरीब देशों को लूटती हैं. अमरीका चाहे जिस देश में फौज भेजकर वहां के निर्दोष आदमियों पर बम गिराता है. विकासशील देशों को आपस में लड़वाकर अपने हथियार बेचता है. और सबसे बड़ी बात यह है कि पूरी मनुष्य जाति का नाश करने के लिए आणविक हथियार बनाता जा रहा है और उन्हें तैनात करता जाता है. यह क्या मानव

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा हुई? अमेरिका के लायंस क्लब क्या इसी मानव-सेवा में सहयोग करते हैं. आपके भारत के लायंस क्लबों ने कभी यह मांग की कि मनुष्य जाति को बचाने के लिए आणविक हथियारों को नष्ट कर देना चाहिए और आगे नहीं बनाना चाहिए. बताइए ऐसा प्रस्ताव पास किया आप लोगों ने?

अब लॉयन अग्रवाल बहुत परेशान हो उठे थे और दुखी भी थे. वे बोले-विश्वशांति की बात कम्युनिस्ट लोग करते हैं. मैंने पूछा–क्या आप विश्व-शांति नहीं चाहते. अग्रवाल ने कहा—चाहते क्यों नहीं हैं. मैंने कहा-तो फिर हथियार बंदी और विश्व-शांति की मांग करने में क्यों शर्म आती है? अग्रवाल का धीरज टूट चुका था. उन्होंने कहा-देखिए स्वामीजी, आपने जितनी बातें अभी तक कहीं हैं, वैसी बातें कम्युनिस्ट करते हैं. मालूम होता है आप भी कम्युनिस्ट हैं. तुलसी ने कहा—नहीं भाई, मैं कम्युनिस्ट नहीं हूं. साधू-संत कम्युनिस्ट नहीं होते. अग्रवाल ने कहा—होते क्यों नहीं हैं! एक बिहार के स्वामी सहजानंद थे. वे कम्युनिस्ट थे. और बौद्ध साधु राहुल सांस्कृत्यायन भी कम्युनिस्ट थे. सैकड़ों साधू कम्युनिस्ट हैं. अफ्रीका में सैकड़ों पादरी कम्युनिस्ट हैं. इंग्लैंड में ही आर्कबिशप डाक्टर जानसन कम्युनिस्ट थे. स्वामीजी धर्म रह कहां गया? मैंने कहा-आप धंधा करते हैं न आपके लिए धर्म अब सिर्फ धर्मकांटे में रह गया है.

श्रीमान अग्रवाल ने चाय नाश्ता कराया. बोले—स्वामीजी, यदि आप कम्युनिस्टों की तरह न बोलें तो मैं आज शाम की हमारी मीटिंग में आपका भाषण करा दूं. कोई धर्म, नैतिकता जैसे त्याग, क्षमा, अपरिग्रह, अहिंसा आदि पर बोलें.

मैंने कहा भगवान महावीर के भक्त व्यापारी त्याग, अहिंसा, क्षमा, अपरिग्रह आदि ग्राहक में चाहते हैं, दुकानदार नहीं. अच्छा मैं धर्म और नैतिकता पर बोलूंगा. पर ऐसे भाषणों से क्या आप लोगों की नैतिकता बढ़ती है. लॉयन ने कहा—नहीं, हम पर कुछ असर नहीं होता. पर हम अखबार में प्रचार करते हैं कि हम नैतिकता को बहुत मानते हैं. खैर शाम को मैं लायंस क्लब की मीटिंग में गया. वातावरण अद्भुत कौतुकमय था. एक के बाद एक लायन आता और हाथ मिलाकर झुककर कहता—ग्लैड टू मीट यू. दि प्लेजर इज माइन. तरह-तरह के कौतुक वहां हुए, वहां हुए व्यापारी व बड़े वकील बड़े डाक्टर बड़े ऐजेंट, बड़े डीलर, बड़े अफसर इकट्ठे थे. मैंने एक घंटे वहां 'सामाजिक नैतिकता' पर भाषण दिया. वे लोग मूर्ति की तरह बैठे रहे. उनके चेहरे पर कोई भाव नहीं था. भाषण के बाद मैं हाल से बाहर निकला तो एक युवक मेरे पास आया. उसने कहा—गुसांईजी चलिए मेरे साथ. मैं आपसे कुछ बात करना चाहता हूं. वह लॉन के छोर पर पड़ी एक बैंच पर मेरे साथ बैठ गया. उसने कहा—आप सरीखे संत इन लोगों के चक्कर में कैसे आ गये. मैंने कहा—

जड़ चेतन गुण दोष मय
विश्व कीन्ह करतार,
संत हंस गुण पय लर्हाह
परिहरि वारि विकार.

भई, मैंने हंस की तरह यहां से दूध तौलिया और पानी छोड़ दिया. एक घाघ कवि हो गये हैं, जिन्होंने कहा–विधि के बनाये जीव जैसे जहां एगि, खेलत फिरत जिन्हें खेलन फिरन दे. ये विधि के बनाये तरह-तरह के जीव हैं ये खेलते फिरते हैं, तो इन्हें खेलने फिरने दो.

उस युवक ने कहा—इनमें से एक ने भी आपका एक शब्द भी नहीं सुना. उनका काम बैठना है. तो वे एक घंटे शांति से बैठते हैं. तो वह एक घंटे शांति से बैठे रहे. पर आप किसी से पूछे कि आपने क्या कहा है, कोई कुछ नहीं बता पायेगा. ये लोग ध्यान से सुनते हैं भाषण, इनकम टैक्स अफसर का, सेल्स टैक्स अफसर का, रेवेन्यू बोर्ड के चेयरमैन का, किसी कंपनी के बड़े एक्जीक्युटिव का. इन भाषणों में आध्यात्मिक आनंद मिलता है. यहां एक-दूसरे का धंधा साधते हैं. वकील अपने मुवक्किलों को बताता है जरूरत पड़ने पर फलां डाक्टर के पास जाना और डाक्टर मरीज को बताता है कि फलां वकील के पास जाना. ये लायन दुकानदारों के पास ग्राहक भेजते हैं और दुकानदार लायन वकील व लायन डाक्टर बताता है. और सब मिलकर बिजनेस को बढ़ाने और टैक्स बचाने की साधना में रहते हैं.

मने कहा—मगर यह लोग मानव-सेवा भी तो करते हैं. उसने जबाब दिया—हां ये कभी-कभी मुफ्त चिकित्सा शिविर लगाते हैं. इनमें अक्सर गांव के गरीब लोग आते हैं. किसी की आंख का आपरेशन होता है, किसी के कान का किसी को और कोई बीमारी होती है. और गांव का एक आदमी भी अच्छा होकर चला जाता है तो सारे गांव में प्रचार करता है कि इन डाक्टर साहब के पास जाना. तो यह मानव-सेवा भी मरीज बटोरने के लिए है. इसमें धंधा है.

मैंने पूछा—पर यहां बहुत अच्छे डाक्टर तो होंगे ना.

उसने जबाब दिया—हां बहुत अच्छे डाक्टर भी हैं, इसमें शक नहीं. पर ऐसे डाक्टर भी हैं जिन्हें भगवान ने स्वर्ग से भेजा है. जैसे एक कान के डाक्टर हैं इस शहर के जितने बहरे हैं उनमें से आधे उनके बनाये हुए हैं. एक आंख के डाक्टर हैं, इस शहर में जितने काने हैं उनमें से आधे इन डाक्टर के बनाये हुए हैं.

मैंने कहा—आप कौन है? क्या आप लायन हैं?

उसने कहा—नहीं मैं पत्रकार हूं. ये लोग मुझे बुलाते हैं. कल मैं आज के कार्यक्रम का बहुत बढ़िया विवरण अपने अखबार में छापूंगा. □

चलते-चलते

'सरकार का यह गलत कदम है कि उसने मिट्टी के तेल से जलने-वाले स्टोव से टैक्स हटा लिया है. उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था."

"क्यों?.. इसमें गलत कदम क्या हुआ? इससे तो उपभोक्ताओं को राहत मिलेगी!"

"तुम क्या जानो! अब बहुएं अधिक जलने लगेंगी." □

● प्र. : सुधा सेठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...और भुलाये न बनें

अविस्मरणीय सपने, घटनाएं और संस्मरण प्रस्तुत करता पाठकों का अपना स्तंभ

मौत से सामना

▣ कुमार अरुण

अभी कुछ दिन पहले पिथौरागढ़ जाना पड़ा. जैसे ही बस अड्डा पहुंचा टनकपुर जाने वाली बस जा रही थी. भागकर बस में चढ़ा पर काफी अनुनय करने पर भी कंडक्टर ने 'सीट नहीं है' कहकर उतार दिया. दस मिनट बाद ही पिथौरागढ़ जाने वाली सीधी बस मिल गयी. टनकपुर जाकर पता चला दिल्ली से आने वाली बस जिसमें से मुझे जबरन उतार दिया गया था रास्ते में लूट ली गई व किसी यात्री के पास कुछ न बचा. सुन कर मुझे पसीना आ गया क्योंकि मेरे पास कंपनी का अंदाजन 30 हजार रुपया था.

उन यात्रियों में से जो पिथौरागढ़ जाना चाहते थे उन्हें जूलाधार जाने वाली बस में बिठाया गया और वह बस हमारी बस के आगे-आगे ही रवाना हुई लेकिन 10 मील दूर जाने पर ही वह बस 250 फीट गहरे खड्ड में गिर पड़ी जिसे देखकर हम सब के चेहरे पीले पड़ गये. किसी तरह छः यात्रियों को बाहर निकाल पाये जिसमें से दो ऊपर आते-आते व एक पिथौरागढ़ पहुंचते-पहुंचते खत्म हो गया. उनको सेंट्रल हास्पिटल दाखिल कराया. मन काफी खिन्न हो चुका था. अगले दिन सवेरे ही वहां का काम निपटा कर वापस दिल्ली के लिए बैठ गया. चंपावत के पास जैसे ही बस ने मोड़ काटा पीछे एक भारी चट्टान सड़क पर आकर गिरी. यदि हम जरा से लेट होते या चट्टान चंद सेकेंड पहले गिरती तो निश्चय ही हम मारे जाते लेकिन मौत हम तक आयी जरूर लेकिन चंद सेकेंड पीछे रह गयी. □

डाकुओं की टोली और वह रात !

▣ मृदुला हालन

उसी साल सर्दियों में पिताजी का स्वर्गवास हो गया था. बड़े भाई-बहन सब विवाहित थे. उस समय मां और मैं बस दो ही प्राणी नाहन वाली अपनी उस बड़ी-सी कोठी में थे. नीचे की मंजिल में फौज के एक कैप्टन किरायेदार के रूप में रहने लगे थे. उन गर्मियों की एक रात, लगभग बारह बजे नींद खुली. लगा, कहीं दूर से जबरदस्त शोर आ रहा है. शोर बढ़ा और नींद भागी. पूरी तरह चैतन्य हुई तो आवाज की तरफ ध्यान दिया. बहुत से ढोल पीटने की आवाज थी. साथ ही बहुत से लोग चीख-चीखकर गा-बजा रहे थे. उद्दंड, निरंकुश स्वर.

हमारी कोठी शहर से बाहर थी. उसके पीछे दूर-दूर तक फौजी छावनी थी. और बाद में घना जंगल. कैंटूनमैंट से आती सड़क से ही वह शोर आ रहा था. स्थिति को समझते-समझते मैं उठ बैठी. देखा मां भी जागकर उठ बैठी हैं और कमरे की शीशे वाली खिड़की से सड़क के लैंप पोस्ट की ओर टकटकी लगाये कुछ देख रही हैं. "क्या है?" मैंने पूछा.

"आज तो कहीं डाका पड़ने वाला है," मां किसी सोच में डूबी-सी बोलीं, "डाकू लोग ऐसे ही ढोल बजाते, गाते आते हैं. . .पता नहीं आज किस की मुसीबत आयी है?" हम दोनों पलंग से उठकर खिड़की से झांककर आवाज की दिशा में देखने की कोशिश करने लगीं. चौराहे से शोर हमारे घर की ओर आती मुख्य सड़क पर मुड़ गया. "बेटी! आज तो डाकू हमारे ही घर आ गये." मां के मुख से बेसाख्ता निकला. "अब क्या होगा?" नीचे शोर बढ़ रहा था. हर लम्हा उन्हें हमारे और नजदीक लाये दे रहा था. "भाग जायें?" पर भागकर जायें भी तो कहां? नीचे तो वे लोग आ ही पहुंचे हैं.

"मैं बाहर जाकर देखती हूं." कुछ निश्चय करके मां ने कहा और वे दरवाजे की ओर बढ़ीं. "नहीं. . ." मेरे गले से घुटी-सी चीख निकली. और भागकर मैंने मां को पकड़ लिया. हर पल जैसे जीने की घड़ियां कम होती जा रही थीं. नीचे कैप्टन साहब थे तो, पर वे अकेले इतने लोगों का सामना क्या करते. वे और उनकी युवा पत्नी. वे दोनों भी संभवतः हम दोनों की तरह अपने ही भय से ग्रस्त होंगे. खिड़की से झांका. भीड़ हमारे मुख्य दरवाजे के सामने खड़ी ढोल पीट रही थी.

कैप्टन साहब शायद चुपचाप और बर्दाश्त नहीं कर सके और उठकर उन्होंने सांकल खोल दी. बड़ा-सा गेट-चर्र-चर्र की आवाज के साथ खुलने लगा और भीड़ ने लपक कर कैप्टन को हाथों-हाथ कंधों पर उठा लिया. उनकी छटपटाहट, हाथ-पांव पटकना, उनकी बेबसी सब हमारी आंखों के सामने एकदम साफ था. . .और यह भी शीशे की तरह स्पष्ट था कि बस अब इनके बाद हमारी बारी है.

. . .और बस. मैं बेहोश हो गयी.

उसके बाद की सारी कहानी अति नाटकीय है. हम सभी बच गए. कोई दैवी चमत्कार नहीं हुआ. ना ही खंभा फाड़कर भगवान स्वयं प्रगट हुए.

दरअसल वे लोग डाकू थे ही नहीं. वे सब वहां के फौजी अफसर थे जो कोई जश्न मनाने कैप्टन साहब के घर आ रहे थे. और हां, बात इतनी-सी थी कि जश्न की योजना बनाने वालों ने हमारे नीचे वाले कैप्टन को अंधेरे में रखा था ताकि आधी रात को अचानक इस तरह पहुंचकर उन को 'सरप्राइज' दिया जा सके. फिर तो सुबह तक वे 'डाकू' कैप्टन साहब के घर जमे जश्न मनाते रहे. □

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नपुंसक

• मधुकर सिंह

तीन अंकों में समाप्य लघु उपन्यासिका

इतिहास बताता है कि जब पूरा रोम आग की लपटों में धू-धूकर जल रहा था वहां का बादशाह नीरो बांसुरी बजाने में तल्लीन था... और हमारे आज के विश्वविद्यालयीय प्रोफेसर अतुल जैसे प्राध्यापकों को इतिहास किन शब्दों में याद करेगा...?—प्रस्तुत है भावी पीढ़ी के तथाकथित निर्माताओं की जीवनचर्या की पहली कड़ी—

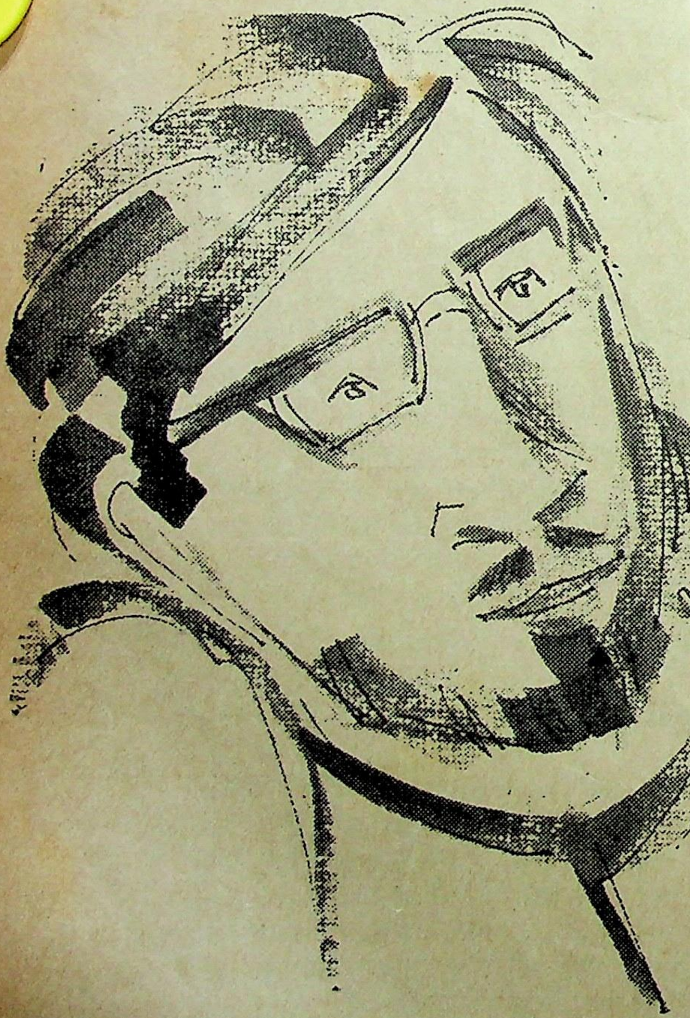

डॉ. अतुल कमरे में अकेले हैं. बाहर थाने का घंटा तीन बार बज चुका है. सर्वत्र घुपाघुप्प अंधेरा. वे दीपा के लिए गालियां बड़बड़ा रहे हैं. उनका नशा अभी तक टूटा नहीं है. वे लगातार अपने दोनों हाथों से गालों पर मारते जा रहे हैं. उन्हें लगता है, उनके गाल अपने नहीं, विदेशी रिचार्ड के हों. उनकी बूढ़ी आंखें गिद्ध की तरह कोटरों से अटकी हुई हैं. ऐसी स्थिति में कोई भी उन्हें देखकर डर सकता है. उनका मन छटपटाता है, अभी जाकर दीपा को रिचार्ड के कमरे से उठा लें. वे जोर से बड़बड़ाते हैं, "ससाला रिचार्ड, विश्वविद्यालय में हंगामा न करा दिया तो डॉ. अतुल नहीं, भंगी की औलाद... इस जोड़ी को हर्गिज साथ नहीं रहने दूंगा. लेकिन मेरा चुनाव है. मैं चुनाव जीतने के लिए दीपा को बेटी तक कह सकता हूं."

डॉ. अतुल ठहाका लगाते हैं और टेबल से गिलास और शराब की बोतल उठा लेते हैं. उनकी सुंदरता पता नहीं, अचानक कैसे गायब हो गयी है और वे शैतान की तरह लग रहे हैं. अगर दीपा यहां होती तो हाथ जोड़कर एकदम निर्भीक बोलती, "आप समाजशास्त्र वाले डॉ. अतुल नहीं हैं, सर. आदमी की खाल में शैतान हैं. मैं आपसे नहीं, शैतान से बचना चाहती हूं."

नशे के समानांतर डॉ. अतुल के दिमाग में अब तक की जिंदगी में आयी सारी लड़कियां चहलकदमी कर रही थीं. वे चाहे अपने विभाग की हों, चाहे दूसरे-दूसरे विभागों की.

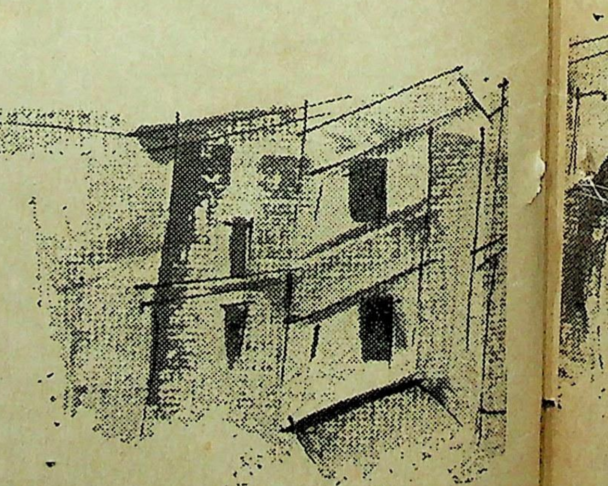

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ. अतुल ने जैसे चाहा है उनके साथ जिया है. इंकार करने का तो कोई सवाल ही नहीं, सारी की सारी समर्पित रही हैं. उनकी लीलाएं सनसनीखेज न होकर आमफहम जैसी हो गयी हैं. शुभादास अकेली ऐसी लड़की है, जिसे आज तक भूल नहीं पा रहे हैं. साली बराबर अतृप्त रही है. अपने विभाग के बाथरूम को अर्पित लीलाएं-क्रीड़ाएं उनके दिमाग को बेचैन किए हुए हैं. दामिनी को तो शादी के पहले ही बच्चा होने वाला था. इससे बचने के लिए उसने कोई उपाय नहीं किया तो डॉ. अतुल का क्या दोष है? वे बेचारे तो इस मामले में बराबर निर्दोष रहे हैं.

दामिनी का ध्यान आते ही डॉ. अतुल फिर ठठाकर हंसते हैं. उसकी एक-एक बात ध्यान में आते ही बड़ा मजा आ रहा है... "अब मैं क्या करूं सर. मैं तो इस बात की कल्पना तक नहीं कर सकी थी." वह बोली थी.

"क्या हो गया है मेरी दामिनी को? मेरे योग्य कोई सेवा." उन्होंने बड़ी सहजता से पूछा था.

"मेरे इस बच्चे का बाप कौन बनेगा?"

"इसकी चिंता मत करो. मैं तुम्हारी शादी करा दूंगा. यह तो मेरे बायें हाथ का खेल है."

मगर दामिनी ने लोक-लाज के भय से आत्महत्या कर ली थी. थोड़े दिनों तक इस बात की सनसनी जरूर थी. अखबारों में भी यह खबर बड़ी सुर्खियों के साथ आयी थी, लेकिन अखबारों में तो बहुत सारी सच्चाइयां छपती हैं. इस छपने भर से ही क्या हो जाता है? दामिनी के मां-बाप मामूली आदमी थे. मामूली बात की तरह दामिनी की आत्महत्या की घटना आयी-गयी हो गयी. सिर्फ रिर्पोटर को उन्होंने गोली मारकर विश्वविद्यालय के कैंपस में लाश टंगवा देने की बात कही थी. साला फौरन पांवों पर आ गया था.

"तुमने ऐसी गलती क्यों की?"

"आपका छात्र रहा हूं. सर, माफ कर दीजिए."

वे बड़ी कुटिलता से मुस्कराये थे. मगर कुटिलता जैसे भाव उनके चेहरे पर कभी अंकित नहीं होते थे. यही तो

जाजिम चीज थी जो हमेशा उन्हें कुलीन लड़कियों-औरतों के बीच चर्चित रखती थी. उनकी उम्र साठ के आस-पास है मगर अच्छे-अच्छे नौजवान उनके सामने पानी भरते हैं. उनके शरीर के गठन का तो कोई जवाब नहीं है. मगर इधर उनकी आंखें गौर करने पर कमबख्त बुढ़ापे का आभास देती हैं. बाकी सारा यौवन ज्यों का त्यों है. कुछ लोग तो उन्हें बीस-पचीस वर्षों से एक ही जैसा देख रहे हैं. बल्कि देखने वाले ही बूढ़े हो गये हैं. सुकीर्ति गुप्ता से उनका मन अभी तक टूटा नहीं है. दरअसल, सुकीर्ति उनकी प्रिय छात्रा रही है और अपने वर्ष की टापर भी. लेकिन बेचारी ऐसे मनहूस पति के साथ बंध गयी है कि उसकी प्रतिभा और डॉ. अतुल की कृपा एकदम नाकाम गयी है.

अचानक कोई उनका दरवाजा खटखटाता है.

डॉ. अतुल चौंकते हैं, "अरे सुकीर्ति तुम?"

सुकीर्ति की सिसकियां रुकती नहीं हैं.

पूरे दरवाजे से सूरज कमरे में फैलता जा रहा है.

"उन्होंने आपको बुलाया है."

"कौन, गुप्ता ने? क्या बात है?"

"मुझे नहीं मालूम."

"तुमने कोई गलती की होगी."

"गलती तो मैंने बहुत पहले की है." वह रोने लगती है. "वे मुझसे कानूनी अलगाव चाहते हैं."

वे हंसते हैं, जैसे सुकीर्ति कोई बचकानी बात कर रही हो. "मैं गुप्ता को समझा दूंगा. उससे बोलना, कॉलेज जाते समय मेरे विभाग से होते हुए जायेगा."

उस दंपत्ति के झगड़े को अतुल ने ही बराबर सुलझाया है. कानूनी अलगाव की धमकी कोई नयी बात नहीं है. सुकीर्ति भी गजब महिला है. डॉ. अतुल के यहां बाप का दरवाजा समझकर बराबर चली आती है.

उन्हें फिर ध्यान आता है, विश्वविद्यालय में लड़कों ने हंगामा खड़ा कर रखा है. उन्हें समझा-बुझाकर विदा कर देते हैं और फिर सोचने लग जाते हैं. दीपा से बदला लेने का यही मौका है. इसी हड़ताल और हंगामे के बीच एक और हंगामा. कोई समझ नहीं पायेगा कि आखिर दीपा और रिचार्ड के मामले को किसने उकसाया है. अलग-अलग कॉलेज की अलग-अलग समस्याएं. उनकी मांगों से शहर की दीवारें भरी पड़ी हैं. मसलन, गलत और नहीं पढ़ानेवाले प्राध्यापकों को दंडित किया जाय... डॉ. अतुल को बर्खास्त करो. बिना प्राध्यापक के विभागों का संचालन बंद हो... परीक्षा की वर्तमान प्रणालियों में आमूल परिवर्तन हो. सिफारिश के बल पर कॉलेज-अधिकारियों और प्राध्यापकों के सुपुत्रों द्वारा प्राप्तांकों की जांच करायी जाये. आदि .. छात्र यूनियनों से डॉ. अतुल को चिढ़ है. थोड़ी-बहुत अगर सहानुभूति है तो सोशलिस्ट बुद्धिजीवियों से. कारण, जयप्रकाश नारायण से एक खास तरह का आंतरिक लगाव है. उनसे जुड़े रहकर भी राजनीति से अलग रहा जा सकता है. डॉ. अतुल अपने जीवन में ही आचार्य नरेंद्रदेव, अच्युतपटवर्द्धन, राम मनोहर लोहिया से प्रभावित

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गये थे. और इनमें बिखराव-अलगाव के बावजूद इन नेताओं के दल के प्रमुख व्यक्तियों के साथ डॉ. अतुल की सहानुभूति और दोस्ती रही है. अचंभे की ही बात है कि कम्युनिस्ट पार्टी का रोहित उनका प्रिय छात्र रहा है. एक चिंता हो सकती है कि रोहित अगर विश्वविद्यालय की हड़तालों में ही फंस गया तो उनके चुनाव का क्या होगा. रोहित से मंत्रणा जरूरी है. सोशलिस्ट नेता उनके भरोसे के आदमी हैं. वे उन्हें अपनी पार्टी का टिकट देने के लिए तैयार हैं.

वे जल्दी-जल्दी तैयार हो गये और अपनी कार उन्होंने एक नेता दोस्त के घर की ओर मोड़ दी है.

संयोग से नेताजी घर पर ही हैं. डॉ. अतुल उनसे बोले, "मैंने मानसिक रूप से अपने को तैयार कर लिया है. मगर एक दिक्कत आ पड़ी है."

"वह क्या?" नेताजी चौंकते हुए पूछते हैं.

"विश्वविद्यालय अस्त-व्यस्त है."

"उससे क्या?"

"लड़के हड़ताल पर हैं."

नेताजी को जैसे कुछ याद आ गया हो. "ऐसी बात है. तब तो मेरी पार्टी के समर्थक लड़के भी हड़ताल पर होंगे. मगर इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ेगा. लड़के तब भी चुनाव में साथ देंगे."

"मेरे खिलाफ भी कुछ लोगों ने दीवारों पर गंदे नारे लिखवाये हैं."

"छोड़िए. ये बहुत छोटी बातें हैं." नेताजी ने सहजता से कहा, "मैंने शिक्षामंत्री से आपके लिए बात चला दी है."

"शिक्षा-मंत्री से?" डॉ. अतुल उनका मुंह ताकते रह जाते हैं.

"वे भी तो कांग्रेस में हमारी ही पार्टी से गये हैं न? उपकुलपति के लिए आपके नाम की चर्चा भी चल पड़ी है."

"इसीलिए तो मैं विश्वविद्यालय की राजनीति से तटस्थ हूं. शिक्षामंत्री ने मुझे भी एक दिन बुलाया था. मगर उन दिनों उनका मंत्रिमंडल संकट में चल रहा था. अधिक बातें नहीं हो सकी थीं. मुख्यमंत्री का फोन आ गया था और वे तत्काल चले गये थे."

"अब चांस बढ़िया है."

डॉ. अतुल की बांछें खिल उठी हैं. उन्होंने अपनी तटस्थता जाहिर करते हुए कहा, "इधर कुछ नहीं हुआ तो तीन साल के लिए शिकागो चला जाऊंगा."

वे कई बार विदेश जा चुके हैं. यहां अपने विषय के जानकारों में उनकी सबसे ऊंची जगह है. दो-चार लोगों में उनका नाम आता है. अगर शिकागो से बुलावा आता है तो यह कोई नयी बात नहीं है.

"विश्वविद्यालय नहीं जायेंगे?" नेताजी पूछते हैं.

"थोड़ी देर के लिए जाऊंगा. प्रो. गुप्ता को समय दे रखा है."

"प्रो. गुप्ता तो अभी थोड़ी देर पहले यहीं से गये हैं."

डॉ. अतुल चौंकते हैं, "उसे कुछ काम था?"

"नहीं. कुछ पारिवारिक मामले थे. पत्नी के साथ पट नहीं रही है. किसी अच्छे कानूनी सलाहकार की तलाश में थे. उनकी पत्नी भी तो किसी कॉलेज में पढ़ाती है न?"

"हां," डॉ. अतुल अन्यमनस्कता से बोले, "हरिदर्शन महिला कॉलेज में हैं."

"तब तो आप उन्हें अच्छी तरह जानते होंगे."

"हां, उसकी पत्नी मेरे ही विभाग में है और गुप्ता राजनीति विभाग में. छोटा परिवार है. उन्हें कोई आर्थिक परेशानी नहीं है."

डॉ. अतुल इस प्रसंग को आगे बढ़ने देना नहीं चाहते. उन्हें तकलीफ है कि सुबह सुकीर्ति उनसे निराश चली गयी है. पता नहीं, सुबह उन्हें क्या हो गया था.

दरअसल कल शाम दीपा और रिचार्ड की पार्टी में जो घटना घटी है, उसकी वेदना अभी तक उनके मन में सुई की तरह चुभ रही है. परमात्मा का शुक्र है कि रोहित जैसा छात्र वहां उपस्थित था. दीपा के तमाचे अभी तक उनके गालों को गुदगुदा रहे हैं. कहीं दीपा के लिए उनके मन में उभरती नफरत तमाम लड़कियों के खिलाफ न हो.

"मुझे तमाम औरतें एक तरह की लगती हैं," डॉ. अतुल अचानक बोलते हैं.

"मतलब?"

"ये बड़ी खुदगर्ज और अवसरपरस्त होती हैं."

नेताजी को शायद ऐसा कोई अनुभव नहीं है. उनके चेहरे के भावों से तो यही लगता है. वे पूछते हैं, "इसका मतलब है, आप प्रो. गुप्ता की पत्नी को अच्छी तरह जानते हैं."

"वह मेरी छात्रा रही है."

"सभी छात्राओं के बारे में आपको इतनी ही अच्छी

लघुकथा

घनत्व

▣ स. मि. सृंजय

दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर गलती से विज्ञान की कक्षा में चले गये. अभी कुछ घड़ी पूर्व से वे एक चिंतन में उलझे हुए थे. मन में एक प्रश्न बारंबार घुमड़ रहा था, मगर समाधान मिल नहीं रहा था. वे सोच रहे थे, 'सत्य इतना सशक्त होते हुए भी क्या कारण है कि झूठ के नीचे दब-सा जाता है? सर्वत्र झूठ-ही-झूठ क्यों दिखाई पड़ रहा है?'

पीरियड भौतिकशास्त्र का था और उनके चले आने से विद्यार्थी अचंभित से हो गये. फिर भी सम्मान-प्रदर्शन के लिए खड़े हो जाना पड़ा. प्रोफेसर महोदय को इन सबसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतलब नहीं था. उन्होंने तपाक से प्रश्न पूछा, "आप लोग यह बताएं कि झूठ के महासागर में सत्य क्यों डूब गया है?"

विज्ञान के विद्यार्थियों को ऐसे अमूर्त प्रश्नों से आज तक साबका पड़ा नहीं था. वे चकराये हुए-से एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे. एक ने अपने साथ वाले लड़के से कहा, "यार, प्रश्न का विशिष्ट गुरुत्व तो कुछ अधिक ही मालूम पड़ता है." अचानक उसे कुछ सूझा तो प्रोफेसर महोदय की ओर उन्मुख हुआ, "सर! शायद झूठ की अपेक्षा सत्य का घनत्व अधिक होता है और वह अनसॉल्युबल भी है. विज्ञान कहता है कि अधिक घनत्ववाली चीज अपने से कम घनत्व वाले द्रव में डूब जाती है. मेरी समझ से झूठ द्रव-सा होता है, तभी तो इधर से उधर फिसलता चलता है. अतः यही कारण है कि सत्य नीचे तथा झूठ ऊपर आ गया है."

प्रोफेसर महोदय पलांश के लिए ठिठके और फिर "यूरेका. . . यूरेका. . ." चिल्लाते हुए कक्षा से बाहर की तरफ दौड़ पड़े. □

● 240डी, अरुण लॉज, दक्षिणधादका,
आसनसोल-713302

जानकारी है?"

डॉ. अतुल अपनी नग्नता के एहसास से चौंकते हैं. इसलिए वे प्रसंग बदलकर पूछते हैं, "आप कहीं चलेंगे?"

"कहां चलना है?"

"कहीं भी."

नेताजी डॉ. अतुल के साथ बेमतलब निकल पड़ते हैं. डॉ. अतुल को गुप्ता से मिलना जरूरी है. हो सकता है, गुप्ता उनसे मिलने विभाग में गये हों. मगर इस समय लड़के किसी के भी घेराव की मूड में हैं. विश्वविद्यालय कैंपस में घुसना खतरे से खाली नहीं है. फिर भी, नेताजी के साथ रहने से एक हिम्मत है.

विश्वविद्यालय के मुख्य द्वार पर डॉ. वेद से पता चल जाता है कि अभी-अभी तमाम लड़के उपकुलपति के निवास स्थान की ओर गये हैं. उनकी कार सरसराती हुई विभाग की ओर मुड़ती है.

"हलो, गुप्ता." वे पर्दा उठाकर अंदर घुसते हुए कहते हैं, "तुम कब से मेरी प्रतीक्षा में हो?"

"लगभग एक घंटे से सर." प्रो. गुप्ता दीवार-घड़ी की ओर आंखें उठाते हुए कहते हैं.

"मैं थोड़ी देर के लिए वर्माजी के यहां चला गया था. वे भी साथ हैं."

"सर, मैं तो इस जिंदगी से ऊब चुका हूं."

प्रो. गुप्ता की बात सुनकर डॉ. अतुल मुस्कराते हैं और मोटे फ्रेमवाले चश्मे के भीतर से उनकी आंखें गुप्ता के संताप को भांप लेती हैं.

"तुम्हें कोई गहरी तकलीफ है?"

"मुझे कोई भौतिक कष्ट नहीं है."

"तब क्या चाहते हो?"

"अपनी पत्नी से अलगाव."

"किसलिए?"

"उसे लगता है कि वही मुझे पालती है."

"और तुम्हें?"

"मुझे भी लगता है कि मैं उसे पालता हूं. अब हमारे बीच समझौते का कोई रास्ता नहीं है."

डॉ. अतुल कुछ सोचने लगते हैं.

गुप्ता के जाने के बाद दोनों फिर वहां से उठते हैं. दीवारों पर चारों तरफ डॉ. अतुल के बारे में भद्दी-भद्दी बातें लिखी हुई हैं. उन दीवारों की ओर इंगित करते हुए डॉ. अतुल नेताजी से कहते हैं, "यह सब मेरे खिलाफ देख रहे हैं? चुनाव में मुझे परास्त करने के लिए पहले से साजिश की जा रही है."

"आप तो चुनाव गांव से लड़ेंगे?" नेताजी अपना असमंजस तोड़ते हैं.

"मेरा इलाका बड़ा गरीब है."

"गरीबी तो सारे देश में है."

"मेरा इलाका देश से भी ज्यादा गरीब है."

नेताजी कुछ विचित्र किस्म से हंसते हैं.

मुख्य फाटक के पास सैकड़ों लड़के खड़े हैं, जैसे डॉ. अतुल की प्रतीक्षा में हों. उन्हें भी भीतर-भीतर दहशत है. उन्हें लगता है कि आज जैसी स्थिति है उसमें किसी न किसी राजनीतिक पार्टी से जुड़ा रहना जरूरी है. रोहित अगर कम्युनिस्ट पार्टी में है तब भी अपने संबंधों में क्या फर्क पड़ता है? निहित स्वार्थ ही सही, मगर अभी तो दो साल तक बच्चू मुट्ठी में है. डॉ. अतुल के लिए नहीं, स्वयं अपने स्वार्थ के लिए भी रोहित उनका खुलेआम पक्षधर है.

उनकी गाड़ी सरसराकर निकलना चाहती है. मगर जान-बूझकर लड़के बीच रास्ते पर ही खड़े हैं. गाड़ी सायास ही रोकनी पड़ती है. "मेरे लायक कोई सेवा है." डॉ. अतुल गर्दन निकालकर मुस्कराते हैं.

"मैं तो आप लोगों के साथ हूं."

तभी रोहित गला फाड़कर चिल्लाता है, "डॉ. अतुल. . ."

"जिंदाबाद." सैकड़ों आवाजें एक साथ गूंज उठती हैं.

रोहित की आंखें डॉ. अतुल से मिल गयी हैं. उनकी जान में जान आती है. उनसे आभास मिल गया है, शाम को रोहित घर पर जरूर आयेगा.

कार फिर सड़क की ओर तेजी से भागती है.

शिक्षण संस्थाओं में सर्वत्र आग लगी हुई है. लगभग सभी कॉलेज बंद हैं. ऐसे हालत में सरकार को क्या हो गया है? सत्ताधारियों के लिए बराबर चुनाव क्यों जरूरी है? शायद, जनता और छात्रों का दिमाग अपनी मांगों की ओर से हट जाये और वे हड़ताल-आंदोलन का रास्ता छोड़ दें. डॉ. अतुल का भी यही विश्वास है कि छात्र आंदोलनों को तोड़ने के लिए

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुनाव जरूरी है. डी.पी. कॉलेज के गुप्ता, सिन्हा, महेंद्र, गुरुप्रसाद सभी के सभी एक नंबर के डरपोक और काहिल हैं. उपकुलपति की चमचागीरी कभी नहीं छोड़ सकते.

शाम को सचमुच रोहित आता है, मगर अकेला.

"रिचार्ड को नहीं लाये?" वे पूछते हैं.

"फुर्सत ही नहीं मिली." वह कहता है, "सारा दिन हमारी बैठकें चलती रहीं. आंदोलन अभी चलेगा. मगर, सर, लड़कों से मैंने आपका जय-जयकार करा ही दिया."

डॉ. अतुल कुछ बोले नहीं.

हंसते जा रहे हैं.

"तुम्हें कुछ मालूम है?"

"क्या, सर?"

"उपकुलपति के लिए मेरे नाम की भी चर्चा है."

"सचमुच," रोहित मन से उछल जाता है. "वायदा मानिए सर, लड़कों को आपके पक्ष में मोड़ लूंगा."

"यह कैसे?"

"आज रात हम आपके पक्ष में भी दीवारों पर नारे लिखने वाले हैं."

"लड़के तैयार हैं?"

"मेरी यूनियन का बहुमत आपके पक्ष में है."

डॉ. अतुल का चेहरा अचानक गंभीर हो जाता है. "सुनो रोहित, दीपा को मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता. उसने मेरा अपमान किया है."

"एक बात है, सर," रोहित बोलता है, "प्रो. कांतिमोहन को आपके पक्ष में लाना आसान नहीं है. वे छात्रों में सबसे ज्यादा लोकप्रिय हैं."

डॉ. अतुल का चेहरा सिकुड़ जाता है. "उस मामूली आदमी को चींटी की तरह मसल दूंगा. मेरे पास ऐसा हथियार है कि वह जिंदगी भर के लिए जेल में सड़ता रहेगा."

रोहित अजीब असमंजस में पड़ जाता है. उनकी बातों का क्या उत्तर दे? कैरियर सामने आते ही भीगी बिल्ली बन जाता है. उसकी कहानियों का सारा विद्रोह फीका पड़ने लगता है. रमेश के साथ प्रो. कांतिमोहन के यहां आने-जाने का उसे कई बार मौका मिला है. कांतिमोहन उसे इतना ज्यादा आकृष्ट कर चुके हैं कि कैरियरिज्म एकदम हास्यास्पद लगता है. क्या डॉ. अतुल सचमुच पापी और हरामी चीज है? डॉ. अतुल से इसीलिए कभी आंतरिक सहानुभूति नहीं बनती कि उन्हें कांतिमोहन जैसे लोगों से भी चिढ़ है. रोहित को यह पसंद नहीं है. वह बराबर प्रो. कांतिमोहन से डॉ. अतुल की प्रशंसा करता रहा है और बतलाता रहा है कि कांतिमोहन किस प्रकार उनसे श्रद्धा रखते हैं मगर अतुल तो उनका नाम तक सुनना नहीं चाहते. प्रो. कांतिमोहन तरह-तरह की समस्याओं को लेकर कई बार जेल भी गये हैं. पुलिस की आंखें उनके प्रति बराबर चौकन्ना रही हैं. फिर भी विश्वविद्यालय से संबद्ध सभी कॉलेजों में उनके चारित्रिक गुणों के प्रति सम्मान है, क्योंकि चाहे शिक्षकों की समस्या हो, चाहे छात्रों की अथवा शहर या समाज की ही कोई समस्या क्यों न हो— प्रो. कांतिमोहन संघर्ष के समय अगली कतार में होते हैं. डॉ. अतुल तो संभ्रांत और ईर्ष्यालू मिजाज के आदमी हैं. प्रो. कांतिमोहन ने जब दूसरी जाति की लड़की के साथ शादी कर ली थी तो डॉ. अतुल ने लड़की की जातिवाले छात्रों को उकसाकर हंगामा खड़ा कर दिया था. उन्होंने कांतिमोहन पर कातिलाना हमला भी करा दिया था. मगर कांतिमोहन बाल-बाल बच गये थे. अब तक कांतिमोहन ऐसे दर्जनों हमलों से बाल-बाल बचते रहे हैं.

"कांतिमोहन की बर्खास्तगी की फाइल चल रही है." डॉ. अतुल कहते हैं.

"यह तो सरासर गलत चीज है, सर."

"उस पर क्रांति के लिए छात्रों को उकसाने का इल्जाम है."

"इसका प्रमाण, सर?"

"इससे भी बड़ी बात यह है कि उसका नक्सली आंदोलन से सरोकार है."

"इससे क्या हुआ सर." रोहित उठकर खड़ा हो जाता है. "हर आदमी अपनी राजनीतिक विचारधारा के लिए स्वतंत्र है. आप तो गैर राजनीतिक आदमी हैं. आपको इससे घबड़ाहट क्यों है?"

डॉ. अतुल जान-बूझकर चुप्पी साधना चाहते हैं. परंतु रोहित को लगता है, दोनों तरफ की कायरता बड़ी जहरीली और खतरनाक है. एक सघन सन्नाटा डॉ. अतुल के कमरे में पसरता जा रहा है. टेबल पर अमरीकी प्रकाशन की किसी समाजशास्त्री पुस्तक के पन्ने पंखे की हवा में तेजी से फड़फड़ा रहे थे. मगर सन्नाटे के बीच अहसास अभी हुआ है.

डॉ. अतुल बोतलों की अलमारी की ओर झुकते हैं.

"तुम्हारे लिए भी एक ग्लास रखता हूं."

"आज नहीं, सर."

"क्यों?"

"मन बहुत भारी है."

"इसीलिए तो जरूरी है."

रोहित कुछ नहीं बोलता. डॉ. अतुल उसके सामने का ग्लास भी भर देते हैं.

अगले अंक में

क्या डॉ. अतुल प्रो. कांतिमोहन को कोई नुकसान पहुंचा सके... क्या सुकीर्ति और गुप्ता के संबंधों में आयी दरार का कोई लाभ उठा सके... क्या रिचार्ड और दीपा से बदला ले सके... और क्या रोहित तय कर पाया कि उसे कैरियरिज्म प्यारा है या आदर्श...?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी एकल प्रदर्शनी में

• लतीफ घोंघी

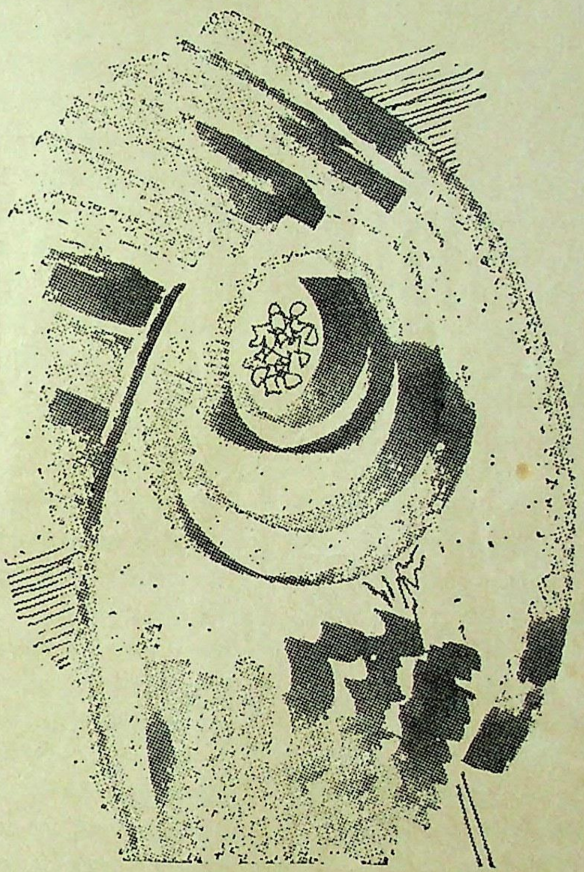

कैसा होता है मॉडर्न आर्ट का भूत...और जब सवार हो जाता है किसी भले आदमी पर तो कैसे-कैसे गुल खिलाता है? कभी सोचा है आपने! नहीं, तो जरा इन साहब की दास्तान ही सुन लीजिए...

आर्ट गैलरी में तस्वीरों से अधिक खूबसूरत महिलाओं को देखना अच्छा लगता था. कितनी सादगी थी उनके चेहरों पर. आर्ट गैलरी में जाना और उसके लिए लिबास चुनना अच्छी महिलाओं का ही काम है और कौन-सी महिला ज्यादा अच्छी है, यह चुनना हम जैसे निकम्मे लोगों का.

वे बड़े व्यस्त थे अपनी तस्वीरों को लेकर. दाढ़ी बेतरतीब बढ़ी हुई. बिखरे हुए बाल. मोटा कुरता. कंधे पर लटकता एक झोला. झोले में एक डायरी. आर्टिस्ट होता ही कुछ ऐसा है. मुझे अपनी एकल प्रदर्शनी में आया देखकर जरा हल्के-से सिर झुकाकर उन्होंने मेरा अभिवादन किया. चेहरे पर हल्की-सी मुस्कुराहट लाकर मेरे करीब आये. कहा, "आप तो मेरे साथ ही रहें.'' मैंने कहा, "मैं तो मॉडर्न आर्ट समझता ही नहीं हूं." वे बोले, "जानता हूं. माडर्न आर्ट आज की कविता से बहुत करीब है... आपकी कविताएं मेरी समझ में नहीं आती... फिर भी कोशिश तो करता ही हूं ना..

एक पेंटिंग के पास बहुत से लोग जमा थे. शीर्षक था—माई लैंड. लगता था जैसे चारपांच काक्रोचों को अलग अलग रंग के डिब्बों में डालकर केनवास पर छोड़ दिया गया था. काश्मीर से कन्या कुमारी तक भारत एक है. वह बोले, "मुझे इस पर एवार्ड मिला था एंट्री वन में. मैंने पी.एम. को यह पेंटिंग प्रेजेंट की तो वे देर तक सोचती रहीं फिर बोलीं—मेरे सपनों को आपने साकार कर दिया... कुछ ऐसी ही कल्पना मैं करती हूं अकेले में अपने देश के बारे में..."

उनका बात करने का ढंग बहुत ही आकर्षक था. कई महिलाएं आकर्षित हो गयीं एक साथ. (मैंने सोचा कवि कितना बदकिस्मत होता है इस मामले में. आज तक किसी महिला ने आकर मुझसे नहीं कहा कि आपकी यह कविता कितनी अच्छी है. साला फालूत काम है कविता करना भी.

वे बोले, "आपको समझाना पड़ेगा. जरा भीड़ कम हो जाने दीजिए."

मैंने कहा, "ये कोने में जो लाल रंग का घेरा है, लगता है जैसे..." वे बीच में ही बोले, "एक सिंबल है रिवोल्यूशन का... इसी तरह एक घेरा होता है जो बढ़ते-बढ़ते इतना बड़ा हो जाता है हमारे आसपास... देखिए वहां से बिखरता हुआ यह रंग साउथ में चला गया... फिर कुछ नीचे श्री लंका में...और ये आड़ी रेखाएं देख रहे हैं आप... कितनी परफेक्ट... ये लाइफ है... लेकिन उसके बीच हरे रंग के धब्बे... खेत हैं हरे-भरे... हमारा देश कृषि प्रधान है...इसका रंग तो हमें बचाकर ही रखना है... और ये भूरे रंग के कीड़ों की तरह जो रेखाएं हैं, बस समझ लीजिए पेरेसाइट्स हैं... आई मीन पोलिटिक्स पेरेसाइट्स...और आप पांच रंग देखेंगे इस पेंटिंग में...कांपेरिटिव्हली एक दूसरे से डार्क होते हुए... यही डेमोक्रेसी है..."

भीड़ बिल्कुल कम हो गयी थी. शाम के पांच बजनेवाले थे. गैलरी बंद हो जायेगी थोड़ी देर में. वे बोले, "यहां तो पब्लिक टेस्ट की पेंटिंग्स लगायी हैं...घर चलते हैं... पहले थोड़ी-सी बीयर ले लें... आजकी शाम... आपके नाम... आपके पास टैक्सी के पैसे तो होंगे.."

उन्होंने अपनी पेंटिंग्स-दीवार से उतार लीं. उन्हें ढंग

CC-0. In Public Domain...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बांधा और बाहर आ गये. इतने बड़े आर्टिस्ट के साथ होना मेरा सौभाग्य ही था. मैंने कहा, "वो 'माई लैंड' वाली पेंटिंग आपके खयाल से कितने की होगी."

वह बोले, "सच बताऊं. . . अपने यहां तो आर्ट की कोई कीमत नहीं है. . . एक विदेशी इसके दो हजार दे रहा था मुझे. . . सोचता हूं किसी इंटरनेशनल आर्ट एग्जिबीशन में भेजूंगा. . . हजार दो हजार क्या होता है आर्टिस्ट के लिए. . . दस-बीस हजार डालर तो मिल ही जायेंगे. . ."

एक मैली दरी बिछाकर वे सोते थे. बड़े लोग इसी तरह सोते हैं. एक कोने में मिट्टी का घड़ा था. उस पर अल्मुनियम का गिलास औंधा रखा था. रंगों के डिब्बे थे. बेतरतीब बिखरे हुए कागज थे. एक रैक पर उनकी पेंटिंग्स थीं. उनकी जिंदगी भर की कमाई. सभी कुछ इसी कमरे में था.

मैंने कहा, "आपकी पेंटिंग्स में प्यार नहीं मिला कहीं."

उनके चेहरे पर तनाव की रेखाएं खिंच गयी. रैक पर से एक पेंटिंग लाकर मुझे दिखाते हुए बोले, "इसे देखो. . . यह उसकी तस्वीर है. . . माई फर्स्ट एंड लास्ट लव. . ."

मैंने गौर से देखा. एक मकड़ी दीवारनुमा किसी चीज पर चिपकी थी, पीले रंग के धब्बों से घिरी हुई. पीछे बैक-ग्राउंड में नीला आसमान था. एक स्क्रू ठीक बीचों-बीच आड़ा चिपका हुआ था. फटी हुई रंगीन चिंदी का टुकड़ा मकड़ी के ऊपर था जिसे छूने की कोशिश में मकड़ी थी.

वह बोले, "आज भी इस पेंटिंग को देखता हूं तो बदन में झुरझुरी भर जाती है. . . देखिए. . . मेरे रोंगटे खड़े हो गये. . . थी ही वह कुछ ऐसी. . . जो देखे बस देखता ही रहे. . . एक दम स्लिम! . . . यह पेंटिंग मैंने उससे पहली मुलाकात पर बनायी थी. . .आप कोने में देख रहे हैं ना. . .लव. . . बस यही शीर्षक है इसका."

मैंने कहा, "ये फटी हुई साड़ी कहां से आ गयी बीच में?"

वे गंभीर हो गये. बोले, "यही तो आर्टिस्ट का जेनुइन टेलेंट है. . . सूझ है मॉडर्न आर्ट की. . . ए सिंबल आफ टोटल वीमेनशिप. . .बड़े इंडस्ट्रियलिस्ट की लड़की थी. . . घर पर चार-चार कपड़े की मिलें थी. . . और पीले रंग के धब्बे ये सारे एनिमिक सिचुएसंस हैं लाइफ के."

उनकी आंखों की पुतलियां फैलने लगीं. मैंने कहा, "ये स्क्रू कहां से आ गया?"

वह बोले, "नहीं समझेंगे आप. . .मॉडर्न पेंटिंग रिक्वायर्स इमोशनल सैंटिमेंट्स टू अंडरस्टेंड. . . यही तो है जिंदगी का मेटलिक व्यू. . . टेंशन एंड स्ट्रगल टू सरवाइव. . . जब उसे पहली बार दिखायी मैंने तो बस देखती ही रह गयी. . . सब कुछ भूल गयीं. . . शी हैड मारवलस एप्रिशिएसन फार मार्डन आर्ट. . . और हरामजादी. . . "

उन्होंने पेंटिंग पर जोर की लात मारी, बोले, "आप जाइए. . . मैं बहुत डिस्टर्बड हो गया हूं. . . फिर मिलेंगे. . ."

भूत मारता नहीं—परेशान करता है. मुझे मॉर्डन आर्ट का भूत परेशान कर रहा था. इस बीच मैंने कोई पचीस-तीस पेंटिंग बना डालीं. घर का कूड़ा-कचरा सब काम आ गया. बच्चों की फटी हुई निकर के टुकड़े, मेरे पाजामे का नाड़ा, पत्नी के ब्लाउज के टूटे हुए बटन, कचरे में पड़ी हुई साइकिल की चैन. . . बूच रस्सी, वायसर, नट बोल्ट, जंग खाई हुई गुम हुए तालों की चाबियां. इन सबको फेविकोल से जब मैंने कार्ड बोर्ड पर चिपकाया तो रंगों की कभी रह गयी. पेंटर की दुकान से बचा हुआ हर रंग का डिब्बा आधे भाव पर ले आया. उनकी एकल प्रदर्शनी में इसके अलावा और कुछ था भी तो नहीं.

अचानक एक दिन वे घर आ गये. बोले, "सॉरी. . .उस रात मैंने आपके साथ बत्तमीजी की. . . रीयली आई एम सॉरी फार दैट. . . प्लीज फारगिव इट. . ."

मैंने कहा, "कोई बात नहीं. . .आई क्वाइट अंडरस्टेंड दी सेंटिमेंटस आफ एन आर्टिस्ट लाइक यू. . ."

मार्डन आर्ट का असर मैनर्स पर कितना पड़ता है इस बात का एहसास आज पहली बार मुझे हुआ. इस तरह मैं बोलता ही नहीं था कभी.

पत्नी की ओर देखकर कहा, "लक्की हो. . . बड़ी घरेलू बीवी पायी है." मैंने कहा, "टोटल घरेलू . . दस बच्चों की मां है."

पहली बार वे जोर से ठहाका लगाकर हंसे. बोले, "इस बार भाभीजी की पेंटिंग आपके ग्यारहवें बच्चे के जन्म पर मेरी ओर से प्रेजेंट होगी. . ."

मैंने अपनी पेंटिंग्स जो मिसेज ने किचन के छज्जे पर फेंक दी थीं, लाकर उन्हें दिखायीं. वे बोले, "वंडरफुल. . . ये धुंए के धब्बे. आई मीन स्मोक. . .ग्रेट सिंबल. . . परफेक्टली मार्कसिस्ट थ्योरी आफ लाइफ. . . आप में मार्डन आर्ट के लिए टेलेंट हैं. . . आई एम अगेन सॉरी. . . आपके पास दो सौ रुपये होंगे. . . बस. . . जस्ट फार ए वीक आर टू. . .आर्ट एकेडमी इज सीरियसली थिंकिंग टू परचेज माई पेंटिंग्स."

आज शाम एक और एकल प्रदर्शनी थी उनकी टाउन हाल में. □

● व्यंग्यचित्र : अनिरुद्ध सक्सेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना के खतरे ▣ मथुरादास

कुछ समय पहले मथुरादास ने की एक गलती. . .और अब बच निकलने के लिए ढूंढ़ रहे हैं गलियां. 'आलोचना' करनी है तो आलोचना के खतरे भी उठाने तो पड़ेंगे ही. . . मगर गलियां मिल जायें तो. . .

मथुरादास ने अपने जानते भर बड़ा उम्दा मजाक किया था कि वे अब आलोचक बनेंगे. उसकी विधिवत घोषणा का नाट्य भी उन्होंने किया. मगर उस वक्त अपने उत्साह में आलोचक होने के खतरे नजरअंदाज कर गए.

तब उन्हें नहीं मालूम था कि साहित्य के खालसा नामवरसिंह की हिटलिस्ट में मथुरादास भी शामिल हो जाएंगे.

आलोचना आखिर आलोचना है. कुटीर उद्योग तो है नहीं कि सींकें उठा लाए और टोकरी बनानी शुरू कर दी. वह एक तरह का पराक्रम होता है. किसी जमाने में क्षत्रियों में चामुंडराय हुआ करते थे. बहुत से लोगों की खोपड़ियां काट डालने के बाद वे चामुंडराय कहलाते थे.

वे एक तरह के फ्रीलांसर हुआ करते थे. जिस राजा से ठीक मतलब निकल आए उसी से कमरे में चामुंडराई का फेंटा बंधवाकर खोपड़ियां कतरते रहते थे. अगर उस राजा से नहीं पटी तो चामुंडराई दूसरे से बंधवा ली. पर यह बंधवानी जरूर होती थी. राज्याश्रय के बिना खोपड़ियां काटते रहने में लाभ तो नहीं ही था, खतरे भी बढ़ जाते थे.

आलोचना के चामुंडराय को भी चामुंडराई बंधवानी पड़ती है. चामुंडराई बांधी हो तो हिटलिस्ट तैयार करना अधिकार में शामिल हो जाता है. आश्रय से अपनी रोटी सुरक्षित रहती है और दूसरे के सत्तू में बालू मिलाते रहने का सुभीता हो जाता है.

पिछली बार हर नौसिखिया आलोचक की तरह मथुरादास ने भी कुछ अधकचरी बातें कह दीं. यह ठीक नहीं किया. आलोचक थोड़ा परिपक्व हो जाये, यानी चेहरा सुचिक्कण और बदन दुहरा-दुहरा-सा दिखने लगे तो ऐसी बातें जायज होती हैं.

मथुरादास ने कहा था कि आलोचक के लिए अब पढ़ना या अध्ययन करना जरूरी नहीं है. यह बात गलत है. पढ़ना बहुत जरूरी होता है. बल्कि पढ़ने में श्रम करना पड़ता है. हर किताब उठाइए उसे सीधा कीजिए और लेखक का नाम पढ़िए. किताबें उठाते और नाम पढ़ते जाइए. पढ़कर उन्हें दूसरी तरफ रखते जाइए. नामों का पढ़ना तब तक जारी रखना पड़ेगा जब तक मनपसंद नाम न निकल आए. इस तरह आलोचक होने में अध्ययन का बहुत बड़ा महत्त्व है.

शब्द-चयन में सावधानी एक और बड़ी शर्त है. हमें बार-बार यह घोषणा करनी होगी कि नई पीढ़ी बहुत अच्छा लिख रही है, मगर हम यह कभी नहीं बताएंगे कि उस पीढ़ी में कौन है! नाम लेने की जरूरत हो ही जाये तो उसके लिए पहले से ही तैयार रहना होगा. उस नाम को कई बार दुहरा देने के बाद एक नाम अपने भाई या साले का फिट करने में दिक्कत नहीं होती है. पाठक को लगेगा आलोचक ढेरों नाम गिनाने की उदारता बरत रहा है.

अब देखिए भाषा का भी कम महत्त्व नहीं होता. भाषा बिना शिल्प-चातुर्य ऐसी होती है जैसे बिना मसाले की सब्जी. भाषा का मसाला आलोचक बड़ी होशियारी से कूट-पीसकर तैयार

▣ मथुरादास की डायरी

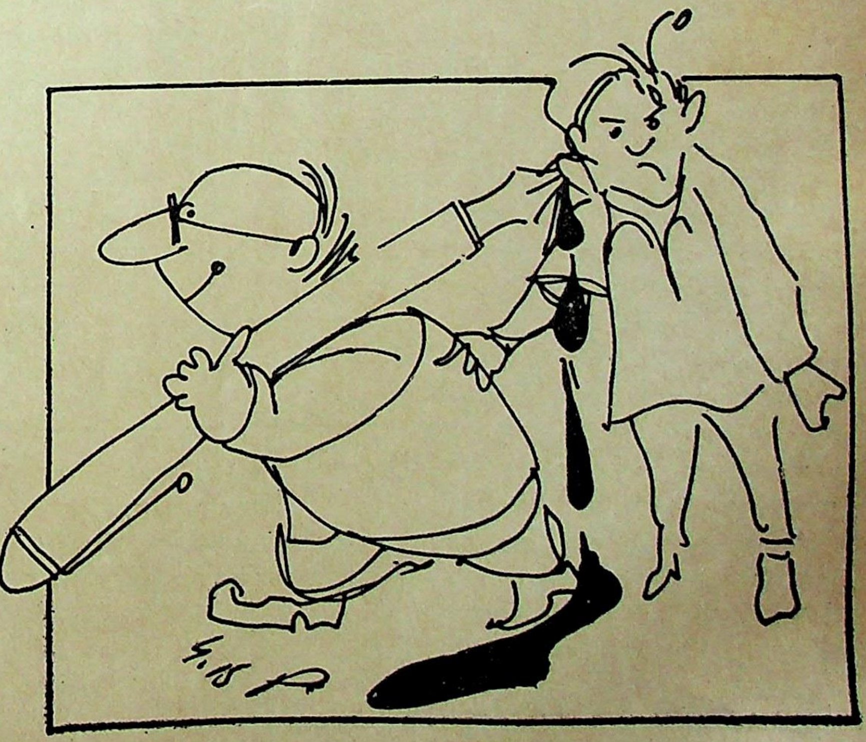

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है. अक्सर वह मसाला कम, विचक्राफ्ट ज्यादा होता है.

किसी जमाने में तांत्रिक (मगर किसी जमाने में क्यों? आज क्या कमी है उनकी?) बड़े पहुंचे हुए हुआ करते थे. वे मरण, सम्मोहन और उच्चाटन में निपुण होते थे. आटे का गुड्ड बानकर उसमें सूई भोंक देते थे और दुश्मन तड़प-तड़पकर मरता था.

आलोचक गुड्डे को सूई नहीं भोंकता क्योंकि गुड्डा वह आटे के बजाय विलायती गटापार्चा वाला रखता है. गुड्डा वह अपने कंधे पर बैठा लेता है और सूई सीधे दुश्मन की कमर में भोंकता है. इससे मरण-क्रिया ज्यादा वस्तुपरक हो जाती है. मरने वाला मारने वाले को देखता हुआ मरता है इससे उसे और अधिक पीड़ा होती है.

वैसे विद्वानों का कहना है कि विषय स्वयं अपनी भाषा खोजता है. आलोचक इत्मीनान से काम ले तो यही होता है. मान लीजिए आपने विषय चुन लिया निर्मल वर्मा या अज्ञेय. आपको भाषा की चिंता कभी नहीं व्यापेगी क्योंकि इनकी भाषा बनी-बनाई है. यहां एक खतरा हो सकता है. निर्मल के पात्र लंदन या प्राहा में टहलते हुए बीयर या वोदका पीते हैं और अज्ञेय के पात्र मसूरी में यह सोचने जाते हैं कि... (वाक्य अज्ञेय खुद पूरा कर सकते हैं, मथुरादास नहीं.)

अब कोई ऐसा लेखक हुज्जत करने लग सकता है जो हिंदुस्तान के ही ऐसे आदमी पर लिखता है जो न प्राहा जाता है न मसूरी, दरभंगा में रहता है.

ऐसे लेखक को सामाजिक सरोकार वाला मोटा दाना खिलाया जाता है. शत्रुओं को सामाजिक सरोकार की तरफ हांककर मित्रों की बीयर का आस्वादन भारी जीवट और कौशल का काम होता है. किसी जमाने में आर्थर केस्लर और हर्बर्ट रीड वगैरह ने यही करिश्मा दिखाया था. उन्हें यकायक लगने लगा था कि उनके कुछ मित्र बहुत सुहाना लिख रहे हैं. रोजी-रोटी का पचड़ा चलता ही रहता है. मजदूर-किसान प्रेमचंद तक ठीक थे. किसान बीयर नहीं घोला हुआ सत्तू पीते हैं. बीयर कोई पाप तो है नहीं. चिलचिलाती धूप में काटी अरहर के गट्ठर ढोने के बजाय लंदन के बर्फ से ढके दरख्तों के नीचे निरुद्देश्य चहलकदमी आदमी को पर्याप्त भद्रता देती है.

किसान मजदूर थोड़ी देर तक तो ठीक लग सकता है. लू या बारिश में छप्पर के नीचे फार-ए-चेंज शैली का संक्षिप्तवास तो किया जा सकता पर बच्चे आखिर कान्वेंट भेजने होते हैं. इंडियन काउंसिल आफ कल्चरल रिलेशंस की दावत में नागार्जुन की तरह हौलू बनकर तो नहीं जाया जा सकता.

ठीक है कि अपना देश, अपना देश है पर विदेश तो देश भी है और सुंदर भी है. आप बताइए हमारे यहां 'पब' कहां होता है? मिट्टी से प्यार होना ठीक है पर चेहरे पर मिट्टी नहीं क्रीम ही मली जा सकती है. क्रीम और उबटन का कुछ फर्क तो होता ही है. बड़ी-बड़ी कंपनियां क्या बौरा गई हैं कि सुगंधित साबुन बेचती हैं? वे सब्जी और उबटन क्यों नहीं बेचतीं? इसीलिए कि आभिजात्य की अपनी शान और गरिमा होती है. आप रामदाने की लइया खाइए और पेस्ट्री खाइए, दोनों एक ही बात तो नहीं हो सकती. हिंदुस्तानी कपड़ा लीजिए दो रोज में चमड़ा लगेगा. विदेशी जूते लीजिए आराम ही आराम. जीवनभर का आराम, अभी कुछ फौजी अफसरों ने बहुत दिन वह आराम भोगा. गांव के मोचीराम से मिलो, ठीक है कि उससे भी हमें मानवीय सरोकार रखना है, जूते सिलवाकर पैसे देने में हुज्जत नहीं करनी चाहिए लेकिन मिस्टर थाम्सन फोर्ड से हाथ मिलाओ तो लगेगा मखमल छू लिया. अब यह कहां की बुद्धिमानी है कि सिर्फ सामाजिक सरोकार जैसी चीज की कसम उठकर जिंदगी भर मारकीन लपेटे फिरें, मखमल छुएं नहीं. फोर्ड या हैरिस से मिलो तो संवेदनशीलता कैसी हरीभरी हो आई लगती है और नागार्जुन से मिलो तो लगेगा दमा आपको भी जकड़ लेगा.

नागार्जुन दांत भी साफ करेंगे तो कोयला चबाकर या नीम की दातौन से घिसकर. लंदन का आदमी खुशबूदार झागवाला टूथपेस्ट चमकीले ब्रश से धीरे-धीरे घिसता है.

एक बार मथुरादास के पड़ोसी की बहू अमरीका से लौटी. वह बच्चे के लिए टट्टी करने की कुर्सी भी लॉस एंजेल्स से लाई थी और बच्चा रोए तो देहातियों की तरह 'टट्टी आई है' नहीं पूछती थी बल्कि संगीतात्मक लय से पूछती थी 'पॉटी?' मथुरादास की बीवी तो दोनों पंजों की खुड्ढी बनाकर बबुआ को बैठा लेती है. कहां खुड्ढी और कहां पॉटी! कहां नागार्जुन का बिहार और कहां अज्ञेय का लास एंजेल्स. नामवर को चुनाव में कोई कठिनाई नहीं होती और मथुरादास भी इस कठिनाई से मुक्त रहना चाहेंगे.

साहित्य आखिर है क्या? अगर वह झोपड़पट्टी है तो लानत है. वह साहित्य ही क्या जिसे पढ़कर अक्ल के झाड़-फानूस रोशन न हो जायें. साहित्य है तो उसे सत्यम् शिवम् सुंदरम् होना होगा और सत्यम् शिवम् तो पेंसिलिन भी हो सकती है. साहित्य को सुंदरम् खास तौर से होना पड़ेगा. हाथीखाना भुसामंडी नहीं चलेगी. मुक्तिबोध स्वर्गीय हैं इसलिए क्षम्य हैं वरना बीयर के बजाय बीड़ी? आखिर यह साहित्य है न कि फतेहपुरी का बाजार.

तो ये सावधानियां अब मथुरादास ने भी बरतनी शुरू कर दी हैं और उन्हें अब सिर्फ एक अदद विजय मोहनसिंह की तलाश है जिनसे बातचीत करके वे अपने सिद्धांत प्रतिपादित कर सकें. □

चलते-चलते

जो कुछ मैंने अब तक देखा है, भोगा है और अनुभव किया है... वह मेरे भीतर, मुझमें ही है. मेरा एक हिस्सा हो गया है वह. और मैं उस सब का एक हिस्सा हो गया हूं जो कुछ मैंने देखा, भोगा और अनुभव किया है. दुनिया ने मुझे बनाया है और मैंने दुनिया को! □

● ख्वाजा अहमद अब्बास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरम्मतवाली

• मोपासां

सच्चा प्रेम क्या होता है? यह जीवन में एक ही बार हो सकता है या अनेक बार? और क्या सच्चे प्रेम की डोर नारी ही संभाल सकती है, पुरुष नहीं?—प्रेम संबंधी ऐसे अनेक सवालों को रेखांकित करती विश्वप्रख्यात फ्रांसीसी कहानी

मार्क्विस बैट्रन अपनी विशाल जमींदारी के एक शानदार मकान में रहता था. शिकार का मौसम अभी शुरू ही हुआ था, और इस उपलक्ष्य में, उसके यहां बहुत से नौजवान आये हुए थे. दोपहर का भोजन समाप्त हो चुका था. एक बड़ी मेज के चारों ओर ग्यारह शिकारी, आठ महिलाएं और जिले का डाक्टर बैठे थे. मेज पर एक बहुत सुंदर मेजपोश बिछा हुआ था, जिस पर गुलदस्ते रखे हुए थे. सब लोगों के सामने स्वादिष्ट पदार्थों और फलों की आकर्षक प्लेटें मौजूद थीं. बातचीत हो रही थी. क्रमशः इस बातचीत ने एक बहस का रूप धारण कर लिया. चर्चा का विषय था कि सच्चा प्रेम, एक मनुष्य के जीवन में एक ही बार हो सकता है या अनेक बार.

जब काफी बहस हो चुकी तो दोनों पक्षों ने डाक्टर साहब को फैसला करने के लिए जज नियुक्त कर दिया. डाक्टर महोदय सारी उम्र, खूब यश कमाने के बाद, अब बुढ़ापे में इस गांव में आकर आराम की जिंदगी बसर कर रहे थे. सारी बहस में वह चुप रहे थे और शायद इस मामले में वह कोई सम्मति नहीं देना चाहते थे. मगर दोनों ओर से बहुत अनुरोध होने पर उन्होंने कहा, "मार्क्विस की यह बात बिल्कुल ठीक है कि यह तो तबीयत का सवाल है. पर मुझे तो प्रेम का एक ऐसा उदाहरण भी मालूम है, जो पूरे पचपन बरसों तक, एक भी दिन के व्यवधान के बिना, एक ही रूप में निरंतर कायम रहा. और पचपन बरसों के बाद, मृत्यु ने ही उसे समाप्त किया."

मार्क्विस की पत्नी ने बड़ी उद्विग्नता से अपने दोनों हाथ मलकर कहा, "आहा, इस तरह का प्यार कितना सुंदर और कितना दुष्प्राप्य है. पचपन बरसों तक लगातार इतने गहरे और पवित्र प्रेम से प्रतिक्षण घिरे रहने में, कितनी प्रसन्नता

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव होती होगी. उस पुरुष का जीवन कितना आह्लादपूर्ण और मधुर होगा!"

डाक्टर मुस्कराया, "सचमुच, एक बात आपने बिल्कुल ठीक कही है; उस घटना में प्रेम का पात्र एक पुरुष ही था. आप उसे जानती हैं. वह शहर का दवाईफरोश मो. कौकेट ही था. उस स्त्री को भी आप जानती हैं. वह कुर्सियों की मरम्मत करनेवाली एक बुढ़िया थी, जो आपके किले में, प्रति वर्ष काम के लिए आया करती थी."

स्त्रियों का उत्साह जाता रहा, उनके मुंह की भंगिमा साफ-साफ कह रही थी, 'हुश! किन फिजूल लोगों का जिक्र छेड़ दिया!' जैसे कि प्रेम पर, इन धनी और कुलीन पुरुषों या नारियों का ही एकाधिकार है, वह गरीबों की, मामूली जनों की चीज नहीं है.

मगर डाक्टर कहता गया कि अभी तीन महीने पूर्व ही मुझे इस बुढ़िया की मृत्युशैया पर बुलाया गया था. पादरी मुझ-से पूर्व ही वहां पहुंच चुका था. उस बुढ़िया ने हम दोनों को अपना कानूनी-ट्रस्टी नियुक्त किया, और अपनी अंतिम इच्छा समझाने के लिए, अपने जीवन का वृत्तांत भी सुनाया.

उसके मां बाप का पेशा कुर्सियों की मरम्मत करना था. वे इतने गरीब थे कि वह सारी जिंदगी भर कभी किसी पक्के फर्शवाले मकान में भी नहीं रह पायी.

उसके मां-बाप गांव के बाहर रहते थे. खेतों की बाड़ की तरफ, वे अपनी गाड़ी खोल देते और उसके निकट उनका घोड़ा घास चरता रहता था. पास ही उनका कुत्ता, अपने पंजों पर अपनी नाक फैलाकर पड़ जाता था. घर के बच्चे, घास पर खेलते रहते, और मां बाप, घर के सामने की सड़क के किनारेवाले वृक्षों की छाया में बैठकर कुर्सियों की मरम्मत किया करते थे.

अपने बचपन भर वह इसी ढंग के वातावरण में पलती रही. जब वह कुछ बड़ी हो गयी तो उसे कुर्सियों के टूटे हुए तलों को जमा करने के लिए भेजा जाने लगा. इस काम के लिए गांव में जाकर, वह अपनी उम्र के लड़के-लड़कियों से दोस्ती जमाने का प्रयत्न करती थी. मगर जब उन लड़कों के बाप उन्हें, इस फटे-पुराने कपड़ोंवाली लड़की के साथ बातचीत करते देखते तो वे गुस्से में भरकर चिल्लाते, "इधर आओ बदमाश कहीं के! किस फटीचर लड़की से बात कर रहे हो?"

बहुत बार छोटे बच्चे उस पर पत्थर फेंका करते थे. कोई-कोई दयालु स्त्री उसे तांबे के सिक्के भी दे दिया करती थी, जिन्हें वह सावधानी से अपने पास जमा करती जाती थी.

जब वह ग्यारह साल की थी, तब कभी इस ओर से गुजरते हुए, उसने छोटे बच्चे कौकेट को देखा. वह पासवाले कब्रिस्तान के नजदीक खड़ा होकर रो रहा था. किसी लड़के ने उसके दो सेंटीमस (फ्रांसीसी पैसा) चुरा लिये थे. इस गरीब लड़की का यह ख्याल था कि, ये भले घरों के लड़के सदा बहुत प्रसन्न और संतुष्ट रहते हैं, आज उन्हीं में से एक लड़के को, इस तरह रोता देखकर, उसके दिल को असाधारण ठेस पहुंची. वह नजदीक आयी और उसके रोने का कारण पूछा. बालक कौकेट ने कारण बता दिया. बालिका के पास इस समय तांबे के सात सैंटीमस थे. उसने ये सब कौकेट को दे दिये. कौकेट ने अपनी आंखें पोंछ डाली और बड़ी प्रसन्नता से इन पैसों को ले लिया. अपने इस अननुभूत कार्य से बालिका को इतनी गहरी खुशी अनुभव हुई कि इसके प्रवाह में वह सभी कुछ भूलकर कौकेट के बिल्कुल निकट पहुंच गयी और उसका एक चुंबन ले लिया. कौकेट ने पैसे मिलने की खुशी में इस मैली-कुचैली बालिका के इस साहस का विरोध नहीं किया. बालिका ने जब देखा कि उसके इस कार्य के बदले में उसे पीटा नहीं गया, गाली नहीं दी गयी, यहां तक कि हल्का-सा विरोध भी नहीं किया गया, तब उसने कौकेट को अपनी बाहुओं में जकड़कर उसके अनेक चुंबन ले डाले और इसके बाद, बिना कुछ भी बोले, वह वहां से भाग खड़ी हुई. . .

न जाने उस लड़की के हृदय पर इस घटना के किस पहलू ने सदा के लिए प्रेम का मधुर आवरण डाल दिया. किसी हृदय में किसी व्यक्ति के प्रति प्रेम क्यों उत्पन्न हो जाता है—यह एक रहस्य है, जिसे आज तक कोई जान नहीं पाया.

वह महीनों तक कब्रिस्तान के इस कोने का और साहब लोगों के समान उजले कपड़े पहने हुए उस बालक का, दिन-रात चिंतन करती रही. वह उसे कभी फिर भी तो मिलेगी, इसी उम्मीद में, उसे कुछ उपहार देने की इच्छा से, वह पैसे जमा करने लगी. घर में से जिस-जिस तरह बनता, वह सैंटीमस उड़ा लेने का प्रयत्न करती. कभी बाजार से घर का सामान खरीदने जाती, अथवा अपने किसी ग्राहक से कुर्सियों की मरम्मत के दाम लाती, तो उसमें से एक-आध पैसा अवश्य ही अपने पास बचा लेती. इस तरह धीरे-धीरे उसके पास एक पूरा फ्रैंक (एक सौ सैंटीमस—एक फ्रैंक) जमा हो गया. मगर उस दिन के बाद वह फिर बालक कौकेट को एकांत में नहीं पा सकी.

पूरे एक वर्ष तक कौकेट की स्मृति को प्रतिक्षण अपने हृदय में जगाये रखने के बाद, बढ़ई की इस लड़की को एक बार पुनः उससे मिलने का अवसर प्राप्त हुआ. इस बार की मुलाकात स्कूल के पिछवाड़े में हुई. वहां कौकेट अपने साथियों में आंख-मिचौनी खेल रहा था. वह भी इन लड़कों में शामिल हो गयी. खेल में, मौका मिलते ही, उसने अपने को कौकेट पर गिरा दिया और उसका एक चुंबन ले लिया. उसके इस कार्य से कौकेट घबराकर चीख उठा. उसे शांत करने के लिए उस गरीब लड़की ने, अपनी छाती के निकट से पूरे चार फ्रैंक निकालकर कौकेट के हाथ में दे दिये. बालक ने इतने बड़े धन को विस्मय के साथ देखा. उसके लिए यह राशि किसी खजाने से कम नहीं थी. इसके बाद उसने बालिका को मनचाही करने की खुली छुट्टी दे दी. . .

इस घटना के बाद, चार बरसों तक वह सभी तरह के साधनों से जो कुछ जमा करती, वह सब मौके-मौके पर कौकेट को, उसके अनिच्छित चुंबनों के बदले में देती रही. एक बार उसने चौदह सैंटिमस दिये, एक बार एक पूरा फ्रैंक दिया और एक बार सत्ताईस सैंटिमस दिये. बालिका को यह राशि बहुत कम प्रतीत होती थी और इस कारण, वह एकांत में दिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोलकर रोया करती थी; इसके अतिरिक्त वह और कर ही क्या सकती थी. अंतिम बार बालिका ने (बालिका क्या, अब तो वह युवती बन चुकी थी) उसे पूरे पांच फ्रैंक का एक नोट समर्पित किया था. इसे लेकर कौकेट खुशी से मस्त हो उठा था.

चार सालों के बाद, कौकेट का दिखायी देना बंद हो गया. उसके मां-बाप ने पढ़ाने के लिए उसे कहीं बाहर भेज दिया था. बहुत कोशिश करने के बाद बालिका को यह बात मालूम हो पायी थी. . .

दो सालों के अनंतर कौकेट वापस लौट आया. वह अब बिल्कुल बदल गया था. पहले की अपेक्षा वह अधिक बड़ा, अधिक सुंदर और अधिक शानदार हो गया था. उसकी बढ़िया पोशाक पर सुनहरी बटन खूब फबते थे. वह इतना बदल गया था कि बालिका उसे कठिनता से पहचान सकी. जब गली में अचानक दोनों का आमना-सामना हो गया तो कौकेट ने ऐसा भाव प्रदर्शित किया कि मानो इस गरीब बालिका को उसने पहले कभी देखा ही न हो. वह बड़े घमंड के साथ उसके पास से निकल गया. यह बात देखकर वह दो दिनों तक लगातार रोती रही और इसके बाद उसने इस असह्य वेदना को चुपचाप अपने हृदय में जगह दे दी, परंतु एक क्षण के लिए भी कौकेट के प्रति क्रोध का भाव उसके दिल में नहीं आया. . .

वह प्रति नये वर्ष के प्रारंभ में कौकेट को अपनी हार्दिक सदभिलाषाएं पहुंचाने के उद्देश्य से, उसके पास जाया करती थी. मगर वहां पहुंचकर उसका सारा उत्साह जाता रहता था. कौकेट उसकी ओर आंख उठाकर देखता तक भी नहीं था. . .

मरते वक्त उसने मुझसे कहा था—'डाक्टर साहब! मैंने आज तक किसी दूसरे पुरुष को पुरुष रूप में का भी प्रयत्न नहीं किया . . .'

कालांतर में उस लड़की के मां-बाप मर गये. और उनकी जगह वही कुर्सियों की मरम्मत का काम करने लगी.

एक दिन अपने मां-बाप की कब्र से घर की ओर लौटते हुए वह गांव में से होकर आ रही थी. मार्ग में, कौकेट की दूकान में से उसने एक युवती महिला को बाहर आते देखा. उसके पीछे ही कौकेट भी बाहर आया और वे दोनों एक-दूसरे की बांह में हाथ डालकर चलने लगे. अभागिनी मरम्मत-वाली यह समझ गयी कि कौकेट ने ब्याह कर लिया है और यह नारी उसकी पत्नी है. . .

गांव के निकट ही एक तालाब है. यह बेचारी सीधी उसी तरफ गयी और अपने जीवन का अंत कर देने की इच्छा से इसने अपने को उस तालाब में गिरा दिया. . .

मगर इस पर भी वह मर नहीं सकी. किसी ने उसे डूबने से बचा लिया. किस्मत से वह बेहोशी की दशा में ही, इलाज के लिए कौकेट के दवाईखाने में ले जायी गयी. कौकेट ने ऐसा भाव दिखाया जैसे वह उसे पहचानता ही नहीं है. कौकेट ने उसके संपूर्ण गीले कपड़े उतार दिये, और उसके नग्न शरीर पर तेल की मालिश और आग का सेक किया. वह होश में आ गयी तो कौकेट ने कहा, "तुम पागल हो! इतनी बेवकूफी से न चला-फिरा करो!" इतने ही शब्दों से उस अभागिनी का, सचमुच पूरा इलाज हो गया. कौकेट ने उसकी मालिश की, वह उससे बोला, यही क्या उसके लिए कम था. इसी बात ने उसे बहुत दिनों के लिए नये सिरे से तरोताजा और प्रसन्न बना दिया.

इसी तरह उसका जीवन गुजरने लगा. वह कुर्सियों की मरम्मत करती थी. मगर उसका संपूर्ण हृदय योगियों की तरह से प्रतिक्षण कौकेट में ही केंद्रित रहता था. बाजार में से आते-जाते हुए उसे शीशों की ओट से कौकेट के अस्पष्ट दर्शन हो जाते थे. वह जरुरत न रहने पर भी मौके-बेमौके कौकेट की दूकान से दवाइयां खरीदती रहती, इससे उसके दो उद्देश्य सिद्ध होते थे, एक तो वह कौकेट के निकट जा सकती थी, उससे बात कर सकती थी और दूसरा यह कि इसके द्वारा वह कौकेट की आय बढ़ाने में यथाशक्ति सहायता पहुंचाती. . .

मैं पहले ही कह चुका हूं कि इसी वर्ष की वसंत ऋतु में उसका देहांत हुआ है. . .

अपनी संपूर्ण जीवन-कथा कह चुकने के बाद, उसने अपने जीवन भर की गाढ़ी कमाई मुझे सौंप दी. यह राशी 2,327 फ्रैंक (सौ बरस बाद अब लगभग दो लाख फ्रैंक के बराबर) थी. उसने मुझे बताया कि भूखी रहकर अर्धनंगी रहकर और कड़ी मेहनत कर यह राशि महज इसी उद्देश्य से जमा करती रही है कि उसका प्रेमपात्र, इस तुच्छ धनराशी द्वारा, कम से कम उसके मरने के बाद तो, उसके हार्दिक भावों का कुछ कुछ अंदाज लगा सके. . . .

जब उसका देहांत हो गया तो उसके अंतिम संस्कार के लिए सत्ताइस फ्रैंक पादरी को देकर, मैं शेष राशि अपने साथ ले आया. . .

ग़ज़ल

अब्दुर्रहीम

सियाह फजाओं में भटकी हुई सदा हूं मैं.
अजीब उलझा हुआ एक मसअला हूं मैं.

मिरे वजूद पे फेंको न तंज के पत्थर,
मिसाले आईना हर लम्हा टूटता हूं मैं.

तग़य्युरात के माहौल में कोई चेहरा,
गुमां की शर्त्त से ऊपर है; हादसा हूं मैं.

खमोश साअतों में चौंक-चौंक जाता हूं,
ये कौन देता है आवाज मुझको क्या हूं मैं.

हर एक सुबह तमाजत से पेश आती है,
हर एक शाम लहू गर्म थूकता हूं मैं.

न तूल मुझको फसानों में दीजिए इतना,
अभी तो लफ्ज हूं मानी कहां बना हूं मैं?

CC-0. In Public Domain...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगले ही दिन मैं कौकेट के पास पहुंचा. पति पत्नी दोनों दोपहर का भोजन समाप्त कर आमने सामने बैठे थे. दोनों परिपुष्ट लाल-लाल और संतुष्ट प्रतीत होते थे, जैसे खालिस दवाखाने की उपज हों. उन्होंने मुझे पूर्ण शिष्टाचार के साथ बैठाया और एक प्याला चाय पीने को दी, जिसे मैंने स्वीकार कर लिया. तब मैंने धीरे-धीरे, बड़ी भावुकता के साथ अपनी कहानी कहनी शुरू की. मुझे यकीन था कि उसे सुनकर दोनों की आंखों मे आंसू भर आयेगें....

मगर ज्योंहीं कौकेट को मालूम हुआ कि वह बेघर-बार की, वह टूटी-टुई कुर्सियों की मरम्मत करनेवाली, वह राह की भिखारिन उसे प्यार करती थी, तो वह क्रोध के मारे जल उठा. जैसे इस बात ने उसकी संपूर्ण प्रतिष्ठा धूल में मिला दी हो! जैसे यह तथ्य जानकर भले समाज में से उसकी सारी इज्जत जाती रही हो! उसकी पत्नी के क्रोध का तो ठिकाना ही नहीं था. वह बार-बार चीख-चीखकर कहने लगी, "वह भीख मांगनेवाली औरत! वह भीख मांगने वाली औरत! ...उसकी यह हिम्मत!"....

वह इतना उतेजित हो गया कि कुर्सी पर बैठा न रह सका. वह उठ खड़ा हुआ और जल्दी-जल्दी कमरे में टहलने लगा. उसकी टोपी कानों की ओर खिसक गयी. वह आवेश के कारण रुकती-सी आवाज में कहने लगा, "डाक्टर साहब! मनुष्य के साथ जो भयंकर घटनाएं अचानक घट जाती है, यह उन्हीं में से एक है. इसका इलाज भी क्या है? ओह! यदि मुझे उसकी जिंदगी में ही यह बात मालूम हो जाती, तो मैं अवश्य ही उसे पुलिस से गिरफ्तार करवा देता. मैं उसे जन्मभर की कड़ी कैद दिलवाता. मैं देखता कि वह फिर किस तरह ऐसी बेहूदा बात बकती है...!"

मैं हैरानी से हक्का-बक्का रह गया. मेरी इतनी भावपूर्ण कहानी का जो परिणाम निकला, उसे देखकर मुझे आश्चर्य होना ही चाहिए था. मुझे कुछ देर तक तो यह भी नहीं सूझ सका कि अब मुझे क्या करना चाहिए. आखिर मैंने कहना शुरू किया, "मरते समय वह अपने संपूर्ण जीवन की कमाई, आपको देने के लिए मुझे सौंप गयी है. यह धनराशि 2,300 फ्रैंक है. यह सारी घटना जब आपको इतनी अप्रिय प्रतीत हुई है, तो मैं उम्मीद करता हूं कि आप यह रुपया गरीबों को दे देंगे."

मेरी यह बात सुनकर वे दोनों बहुत चकित भाव से चुपचाप मेरी ओर देखने लगे. मैंने वह संपूर्ण रुपया अपनी जेब में से निकालकर उनके सामने रख दिया. यह ठीक आधी शताब्दी तक, कड़ी मेहनत से संग्रह किये गये सिक्कों का एक अच्छा खासा ढेर था. इसमें सोना,चांदी, तांबा आदि सभी धातुओं और सभी कालों के सिक्के मौजूद थे. मैंने पूछा, "अब आपकी क्या इच्छा है?"

श्रीमती कौकेट अपने पति से भी पहले बोली, "मगर, हां...यह उस औरत की आखिरी ख्वाहिश थी...मेरा खयाल है कि इसे पूरा न करना बहुत अनुचित रहेगा."

कौकेट महाशय के चेहरे पर लज्जा का भाव स्पष्ट रूप से विद्यमान था. मगर कहा उन्होंने भी यहीं, "इस राशि को हम अपने काम न लाकर अपने बच्चों के लिए व्यय कर सकते हैं."

मैंने कहा, "आप जिस तरह चाहें."

उसने कहा, "खैर, हमें यह धन तो लेना ही चाहिए. आपको तो उसकी आखिरी इच्छा पूरी करनी ही है. इसे किस तरह इस्तेमाल किया जाये, इस संबंध में फिर भी विचार किया जा सकता है."

वह रुपया उन्हें सौंपकर मैं वहां से चला आया. अगले ही दिन की प्रातःकाल कौकेट मेरे पास आया और उसने मुझसे बड़ी निर्लज्जता के साथ कहा, "उस औरत के पास एक गाड़ी भी तो थी, वह आपके किसी काम की तो न होगी?"

मैंने कहा, "किसी काम की नहीं. आप उसे बड़ी खुशी से ले जायें."

कौकेट ने कहा, "बहुत अच्छा. मैं यही चाहता था."

वह लौट चला तो मैंने उसे आवाज देकर कहा, "जरा सुनिए तो, वह एक बढ़ा घोड़ा और दो कुत्ते भी छोड़ गयी है."

उसने आश्चर्यचकित होकर जवाब दिया, "नहीं साहब, उन्हें लेने की जरूरत नहीं. वे मेरे किस काम आयेंगे! आप चाहे, उन्हें जिस तरह इस्तेमाल करें." यह कहकर वह मुस्कराया और उसने अपना हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया. मैंने शिष्टाचार के अनुसार उसे हिला भी दिया. आखिर एक ही जगह रहनेवाले डाक्टर और दवाईफरोशों में लड़ाई हो जाना भी तो अच्छी बात नहीं है!...

वे दोनों कुत्ते मैंने अपने पास रख लिये और घोड़े को पादरी साहब अपने साथ ले गये. वह गाड़ी कौकेट के काम आ रही है और उन रुपयों से उसने रेलवे के पांच शेअर खरीद लिये हैं.

इतना कहकर डाक्टर साहब चुप हो गये.

मार्क्विस की आंखों से आंसू भर आये थे. उसने एक ठंडा श्वास लेकर इतना ही कहा, "सचमुच! प्रेम किस तरह किया जाता है, इसे केवल स्त्रियां ही जानती हैं." □

▣ रूपांतर : चंद्रगुप्त विद्यालंकार

चलते-चलते

"बाबू... बाबू मेरा नाम भी स्कूल में लिखवा दो ना!" कल्लू चपरासी से उसका सात वर्षीय बेटा जिद करते हुए बोला.

"बेटा, अभी तो हम लोगों की इतनी आमदनी नहीं है, अगले साल किसी भी तरह तुझे स्कूल भेजूंगा. अच्छा बता...बड़ा होकर तू क्या बनेगा?"

लड़का रुआंसा होकर बोला, "बाबू ... मैं डाक्टर बनना चाहता हूं. पर तुमने इस साल भी नाम नहीं लिखवाया, तो फिर चपरासी भी नहीं बन पाऊंगा!" □

—महेश मूलचंदानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्वीर बोलती है

इस चित्र का कोई मनपसंद शीर्षक, सिर्फ पोस्ट-कार्ड पर अपने नाम-पते सहित, 30 जुलाई, 1984 तक इस पते पर भेज दें : **संपादक, सारिका (तस्वीर बोलती है : 360) 10, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002.** चुने गये तीन शीर्षकों पर क्रमशः 50, 30 और 20 रुपये के नकद पुरस्कार दिये जायेंगे. आप कितने भी शीर्षक भेज सकते हैं, लेकिन हर पोस्टकार्ड पर ऊपर प्रकाशित 'तस्वीर बोलती है' बतौर कूपन चिपकाना आवश्यक है. एक कार्ड पर केवल एक ही शीर्षक भेजें.

छाया : रवि कपूर, 96 बानवाली गली, चौक, लखनऊ (उ.प्र.)

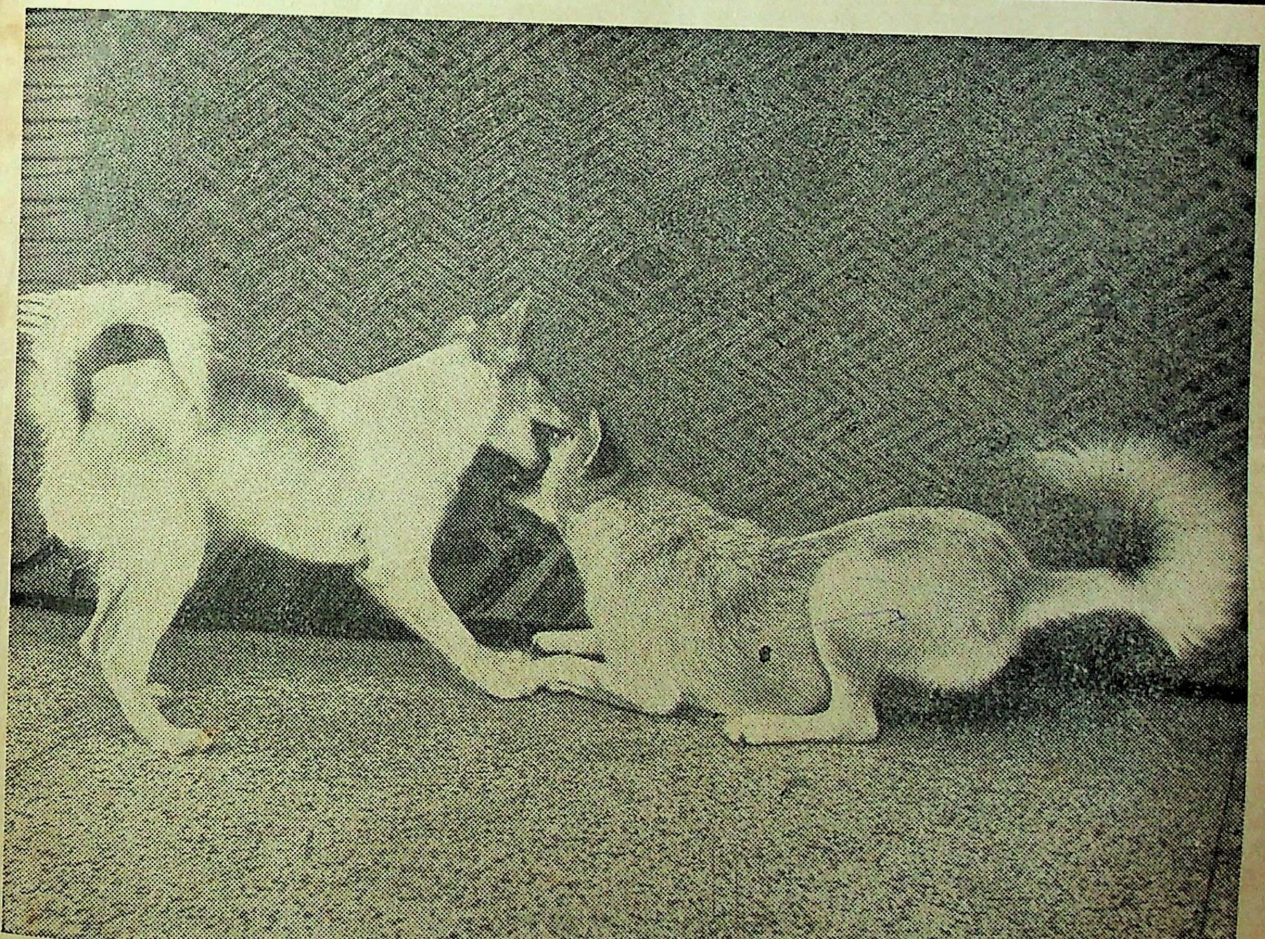

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरुभूमि का वह मेघ

लेखक : रामनिवास जाजू

प्रख्यात उद्योगपति और समाजसेवी स्व० घनश्यामदास बिड़ला के बहुमुखी व्यक्तित्त्व की आत्मीय और प्रेरणाप्रद कथा-यात्रा। अनेक दुर्लभ चित्रों के साथ बहुत ही सजीव और रोचक भाषा-शैली में। रामनिवास जाजू द्वारा लिखा बिड़लाजी का यह जीवन-चरित्र व्यवसाय और उद्योग में सफलता के अनेक सूत्र और आयाम खोलता है।

रायल आकार; कपड़े की पक्की जिल्द; फोटो कंपोजिंग से सुन्दर आफसेट मुद्रण;
पृष्ठ 400। मूल्य केवल 50.00

पेशगी मूल्य भेजकर रजिस्ट्री-डाक द्वारा घर-बैठे पुस्तक प्राप्त करें।

अथवा, स्थानीय पुस्तक-विक्रेताओं से लीजिए!

बंबई : पद्मा पुस्तकागार, घाटकोपर ईस्ट; हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, हीरा बाग; आर० आर० शेठ एण्ड कं०, प्रिंसेस स्ट्रीट
कलकत्ता : ज्ञान भारती; हिन्दी पुस्तक एजेन्सी; हिन्दी साहित्य भंडार; हिन्दी पुस्तक भंडार

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

वामा की गागर में ज्ञान का सागर

नारी-ज्ञान की पूरक: वामा

नारी स्वयं अपने आप को कितना समझ पाई है?

नारी के बारे में जो बातें अक्सर नारी तक भी नहीं पहुंच पातीं, उन सभी को **वामा** बड़ी सरल और मनोरंजक शैली में उस तक पहुंचा कर नारी के अधूरे ज्ञान को पूरा करती है। **वामा** नारी-ज्ञान की पूरक है।

हीन भावनाओं में जकड़ी नारी को **वामा** नया आत्म-विश्वास देकर उसे वक्त के मताबिक आगे बढ़ने को प्रेरित करती है।

वामा का हर पृष्ठ ज्ञानवर्धक है।

विषय चाहे घर-परिवार का हो या देश-विदेश;
साहित्य और कला हो या सैर-सपाटा;
विज्ञान हो या फिल्म-जगत;
नारी-तन की जानकारी हो या नारी-मन की;
बच्चों का पालन-पोषण हो या स्वयं अपने भविष्य का निर्माण।

वामा

विचारशील महिलाओं की विशिष्ट पत्रिका

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

ARMS/D/1114 84/F

वामा नारी के वर्तमान और भविष्य का आईना है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिट्टी

• रमेश उपाध्याय

किसी देश के किसी शहर में एक आदमी मिट्टी बेचकर अपना गुजारा करता था. शहर हालांकि इंट-पत्थर और सीमेंट-कंकरीट का होता जा रहा था, फिर भी उसमें कई मकान अभी कच्चे थे. उन मकानों में चूल्हे भी मिट्टी के थे, हालांकि उस देश में विज्ञान काफी तरक्की कर चुका था और गैस तथा बिजली के आधुनिक चूल्हों का चलन उस शहर में खूब था. सो, उन कच्चे मकानों में रहनेवालों को अपने घरों की लिपाई-पुताई और चूल्हों की मरम्मत के लिए मिट्टी की जरूरत पड़ती रहती थी और वह आदमी मिट्टी बेचकर अपने बाल-बच्चों का पेट पाल लेता था.

मिट्टी बेचना उस आदमी का पुश्तैनी पेशा था और उसका बाप विरासत में उसके लि एक गधा, एक फावड़ा

किसी देश के किसी शहर में......

इस शीर्षक योजना के अंतर्गत कथाकार रमेश उपाध्याय आजकल रूपक. कथा में अभिव्यक्ति की संभावनाओं का जायजा ले रहे हैं. 16 अप्रैल, 84 से प्रारंभ इस श्रृंखला के तहत पिछले अंकों में आप क्रमशः 'बोझ', 'रोशनी' और 'हवा' तीन कहानियां पढ़ चुके हैं.

और एक टोकरा छोड़ गया था. उस आदमी का खयाल था कि बाप-दादों की तरह वह भी ताजिंदगी यही काम करेगा और अपने बेटों के लिए यही विरासत छोड़ जायेगा. लेकिन उसके बाप-दादों के जमाने में मिट्टी शहर से बहुत दूर नहीं हुआ करती थी, जबकि अब शहर के फैलते जाने के कारण मिट्टी दिन-ब-दिन दूर होती जा रही थी.

वह सुबह मुंह-अंधेरे उठता, रात की बासी रोटियां एक लत्ते में बांधकर बगल में दबाता, फावड़ा कंधे पर रखता और गधे को साथ लेकर घर से निकल पड़ता. घंटों चलकर वह शहर पार कर पाता. किसी उजाड़-सी जमीन में जाकर वह गधे को घास चरने छोड़ देता और खुद मिट्टी खोदने लगता. मिट्टी खोदकर वह गधे पर लादता और वहां से बाहर गलियों तक पहुंचने के लिए घंटों का वापसी सफर तय करता. तब तक दोपहर ढल चुकी होती और उस आदमी को जोरों की भूख-प्यास लगी होती. कहीं पानी का इंतजाम देखकर वह रुक जाता, अपनी सूखी-बासी रोटियां चबाकर पानी पी लेता और गधे को भी पानी पिला लेता.

उसे ग्राहक तो कई मिलते, मगर मिट्टी का वाजिब दाम देनेवाले उसमें बहुत कम होते. किसी बड़े त्योहार के दिन, जब कच्चे मकानों में रहनेवाले सभी लोगों को अपने घर-

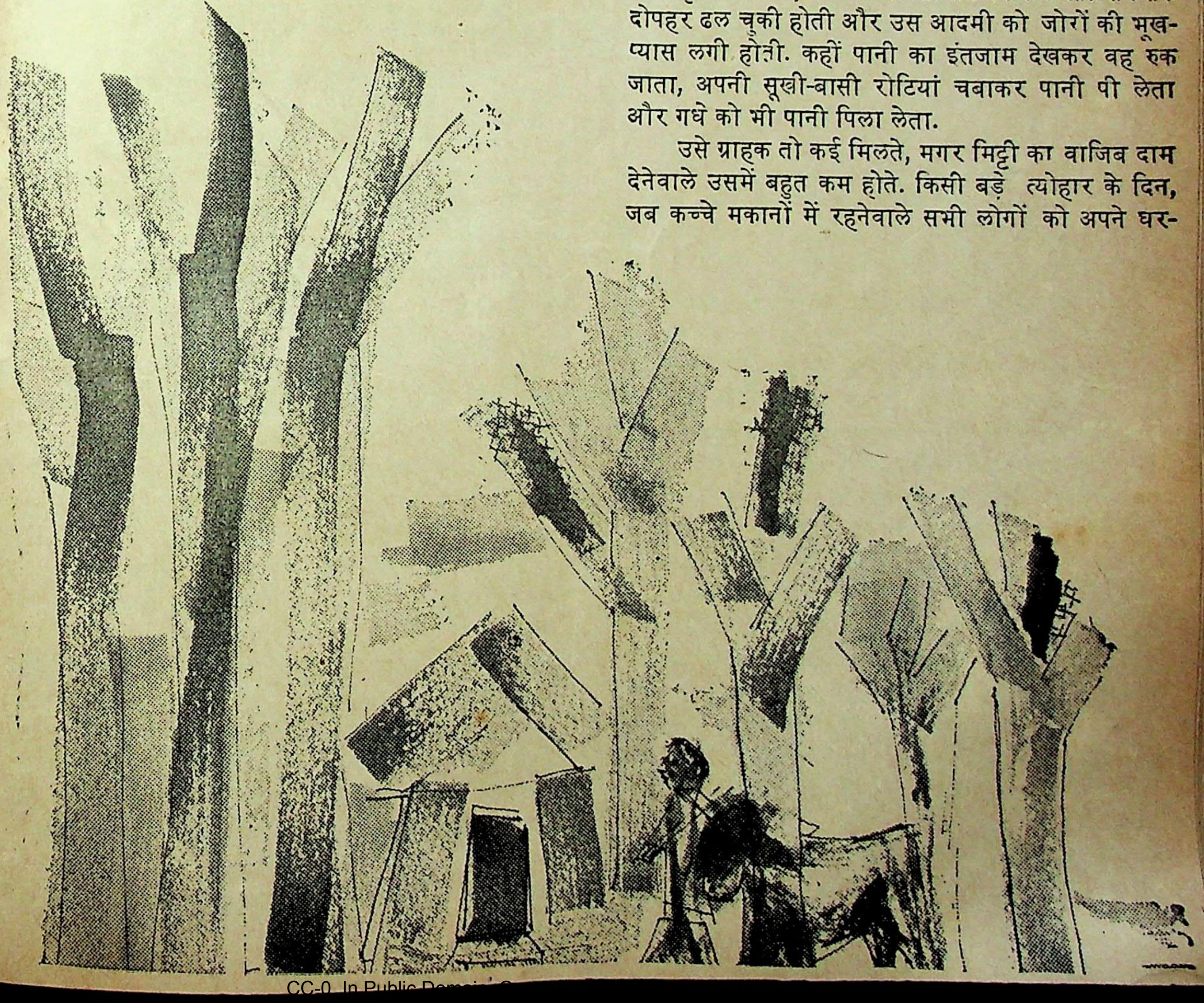

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंगन लीपने होते, उसकी मिट्टी मुंहमांगे दामों पर बिकती, लेकिन साल के बाकी दिनों में ग्राहक उससे सीधे मुंह बात न करते. वे बड़ी हुज्जतबाजी के साथ मोलभाव करते और इतना कम दाम देते कि उस आदमी की मेहनत के मुकाबले मिट्टी की कीमत हमेशा बहुत छोटी पड़ती. अपने ग्राहकों के साथ उसकी बातचीत अक्सर इस प्रकार हुआ करती:

"ए मियां, मिट्टी तो खुदा की नेमत है, सिर्फ खुदाई का इतना दाम?"

"सरकार, मिट्टी आजकल मिलती कहां है? चप्पा-चप्पा जमीन पर लोगों ने कब्जा कर रखा है. जहां भी देखिए, मकान-दुकान, बाग-बगीचे, खेत-खलिहान!... मिट्टी आप लोगों से दिन-ब-दिन दूर होती जा रही है. काले कोसों चलकर जाता हूं, तब एक गधा मिट्टी ला पाता हूं."

"तुम क्या लाते हो, मिट्टी तो गधा ढोकर लाता है मियां!"

"गधा कोई मुफ्त में नहीं आता सरकार! और मालिक, गधा कुछ खाता भी है!"

"यह क्यों नहीं कहते कि तुम खाते हो, तुम्हारे बाल-बच्चे खाते हैं... और मुफ्त की इस मिट्टी से जो माया तुम जोड़ जाओगे, उसे तुम्हारी आनेवाली सात पुश्तें खायेंगी!"

"कैसी बातें करते हैं सरकार! मिट्टी बेचकर मिलता ही क्या है? कसम खुदा की, एक वक्त की रोटी भी मुश्किल से जुट पाती है."

"पर हमने जो दाम बोला है, वहीं देंगे. लेना हो तो डाल दो चार-छह ढेले, नहीं तो हांक ले जाओ अपना गधा आगे."

मजबूर होकर वह आदमी बेहद कम कीमत पर मिट्टी बेच देता. वह जानता था कि आगे भी उसे ऐसे ही ग्राहक मिलेंगे. वह यह भी जानता था कि ये लोग भी मेरी ही तरह गरीब हैं. नहीं तो इनके भी घर मिट्टी के क्यों होते? इनके घरों में मिट्टी के चूल्हे क्यों होते?

लेकिन उस वक्त उस आदमी को रोना आ जाता जब वह बाजार में आटा-दाल खरीदने पहुंचता. आटे-दाल के भाव दिन-दूने चढ़ते जा रहे थे और अपनी जी-तोड़ मेहनत की कमाई से वह आदमी इतना आटा भी नहीं खरीद पाता था कि उसके बाल-बच्चे एक वक्त भरपेट रोटी खा सकें.

फिर भी वह आदमी किसी तरह सब्र करके जिये जा रहा था और ऐन मुमकिन था कि उसकी जिंदगी इसी तरह कट जाती. मगर एक दिन जब वह शहर के बाहर एक फालतू-सी जमीन में मिट्टी खोद रहा था, उस जमीन का मालिक आ धमका और बोला, "अच्छा, तो तू है जो रोज मेरी जमीन में से मिट्टी खोद ले जाता है! मैं यहां मकान बनानेवाला हूं और तूने यहां इतने गहरे-गहरे गड्ढे खोद डाले हैं. मैं कई दिनों से तुम्हारी ताक में था बच्चू, आखिर आज पकड़े ही गये."

वह आदमी घबरा गया और गिड़गिड़ाने लगा, "मालिक, मुझे मालूम नहीं था कि यह जमीन आपकी है, मैं समझता था खाली पड़ी है. आइंदा यहां नहीं आऊंगा, इस बार माफ कर दीजिए."

जमीन का मालिक बोला, "वाह, वाह, ! रोज मेरी मिट्टी चुराता रहा और आज पकड़ा गया तो भोला बन रहा है!"

"मैं चोर नहीं हूं मालिक, बेहद गरीब आदमी हूं. मिट्टी बेचकर गुजरा करता हूं."

"मैं कुछ नहीं जानता. मैं तुझे पुलिस के हवाले करूंगा."

"मर जाऊंगा मालिक! मेरे बाल बच्चे रुल जायेंगे. मुझे छोड़ दीजिए."

"मैं तुझे एक ही शर्त पर छोड़ सकता हू. जितनी मिट्टी तू यहां से ले गया है, वापस लाकर इन गड्ढों में भर दे."

"वह मिट्टी तो मैं बेचकर खा गया मालिक, अब वापस कहां से लाऊंगा?"

"मैं क्या जानूं, पर इन गड्ढों को तो तुझे पाटना ही पड़ेगा. मकान बनाने से पहले इस जमीन को समतल करना जरूरी है. तू नहीं करेगा तो मुझे इसके लिए पैसा खर्च करना पड़ेगा."

"सरकार, आप मालिक हैं, पैसेवाले हैं. लाखों का मकान बनायेंगे, हुजूर का इकबाल बना रहे, जमीन को हमवार कराने के लिए दो-चार गधे मिट्टी डलवा लेंगे तो क्या फर्क पड़ेगा? मैं इन गड्ढों को पाटने लगा तो इतनी मिट्टी लाने में कई दिन लग जायेंगे और तब तक मेरे बाल बच्चे भूखों मर जायेंगे."

मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता. मिट्टी नहीं ला सकता तो गड्ढ़ों की भराई के पैसे चुका दे."

"पैसे कहां से चुकाऊंगा सरकार? मेरे पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं."

"पर तेरे पास यह गधा तो है. इसे बेच दे."

"गधा तो मेरी रोजी का जरिया है सरकार! इसके बिना मैं अपना धंधा कैसे करूंगा?"

लेकिन जमीन के मालिक ने उसकी एक न सुनी. उस पर रहम करने के बजाय गरम होकर उसे चोरी के अपराध का दंड दिलाने की धमकियां देने लगा. मरता क्या न करता, उस आदमी ने अपना गधा बेचकर उस जमीन के गड्ढों की भराई दे दी.

अब वह फावड़ा और टोकरा लेकर मिट्टी खोदने जाता. शहर से दूर जाकर कोई ऐसी जगह खोजता, जहां जमीन बेकार पड़ी हो और उसे कोई देखनेवाला न हो. अब वह सचमुच चोरों की तरह डरते हुए जल्दी-जल्दी मिट्टी खोदता और टोकरा भर मिट्टी सिर पर रख शहर लाकर बेचता. इसमें उसे बहुत तकलीफ होती, क्योंकि टोकरे में मिट्टी ज्यादा होती थी. भार से उसकी गरदन टूटने लगती, और कम भरता तो मिट्टी उसमें इतनी कम आ पाती कि उसे बेचकर मुट्ठी भर चने खरीदना भी मुश्किल हो जाता. लेकिन वह आदमी बडा धैर्यवान था. उसने हिम्मत न हारी और किसी तरह गुजारा करने लगा.

मगर कुछ दिन बाद उसे फिर एक जमीन का मालिक मिल गया. यह मालिक पहलेवाले से भी ज्यादा दुष्ट निकला. उसने अचानक आकर उस आदमी की पीठ पर एक डंडा जमाया और उसका फावड़ा-टोकरा छीन लिया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह आदमी बहुत रोया-गिड़गिड़ाया, लेकिन जमीन के मालिक ने गालियों से बात करते हुए उसे दो डंडे और लगाये तथा धमकी दी, "फिर कभी तुझे यहां देखा तो तेरी टांगें तोड़ दूंगा."

वह आदमी रोता हुआ खाली हाथ शहर लौट चला. एक बार उसके जी में आया कि कहीं रुककर नाखूनों से ही थोड़ी मिट्टी खुरच-खोद ले और दोनों हाथों में जितनी समाये, उतनी ही शहर ले जाकर बेच दे. लेकिन उसे अपना यह विचार बहुत मूर्खतापूर्ण लगा, अव्वल तो इतनी कम मिट्टी बिकेगी कहां? बिक भी गयी तो उसका मिलेगा क्या?

मार खाया हुआ, भूखा-प्यासा वह आदमी शहर में आया और दुख और चिंता में डूबा हुआ सिर झुकाये चलने लगा. लेकिन रास्ते में एक जगह उसे ग्राहकों ने घेर लिया. कहने लगे, "क्यों मियां, मिट्टी कहां है? आज त्योहार का दिन है, घर-आंगन लीपना है. सवेरे से तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं और तुम अब आ रहे हो? सो भी खाली हाथ?"

उसे याद नहीं था कि आज कोई त्योहार है, लेकिन त्योहार की बात सुनकर उसके दिल में हूक-सी उठी. त्योहारों के दिन उसकी मिट्टी झटपट बिक जाती थी और पैसे भी ज्यादा मिल जाते थे. लेकिन आज त्योहार था, ग्राहक मुंहमांगा दाम देने को तैयार थे, और उसके पास मिट्टी नहीं थी. डबडबायी आंखों से वह अपने ग्राहकों को देखने लगा.

किसी ग्राहक ने फिर पूछा, "बोलते क्यों नहीं मियां, मिट्टी क्यों नहीं लाये?"

"मुझे ही खरीद लीजिए सरकार! मैं खुद मिट्टी हो गया हूं!" उस आदमी ने कहा और फफक कर रो पड़ा.

लोगों को उससे हमदर्दी हुई, लेकिन उसके मिट्टी हो जाने की कथा सुनकर सब लोग खामोश रह गये. कहें तो क्या कहें? करें तो क्या करें?

एक औरत को उस पर बड़ी दया आयी. वह चुपचाप घर के अंदर गयी और त्योहार के लिए बनाया गया थोड़ा-सा खाना पत्तल पर परोसकर ले आयी. खाना अच्छा था और वह आदमी भूखा था, लेकिन उसने खाने के लिए बढ़ाया हाथ खींच लिया. बोला, "घर में बच्चे भूख से तड़पते रहें और मैं खाना खा लूं, यह मुझसे नहीं हो सकता बहन! हो सके तो यह खाना बांधकर दे दो, घर ले जाऊंगा."

यह सुनकर दूसरी औरतों को भी तरस आया. वे भी अपने-अपने घरों से थोड़ा-थोड़ा खाना ले आयीं और उस सारे खाने को एक बड़ी-सी पोटली में बांधकर उन्होंने उस आदमी को थमा दिया.

वह आदमी दुआएं देता हुआ अपने घर गया.

इतना ज्यादा और इतना बढ़िया खाना उसके परिवार ने बरसों से नहीं खाया था. प्रसन्न होकर सब उससे पूछने लगे, "आज कौन-सी मिट्टी बेची, जो इतना बढ़िया और इतना सारा खाना मिला?"

उस आदमी ने उन्हें सारा किस्सा सुना दिया.

"तब तो तुम रोजाना खुद को ही बेचा करो. भरपेट खाना तो नसीब होगा." उसकी पत्नी ने तृप्त होकर उंगलियां चाटते हुए कहा.

अगले दिन वह आदमी फिर उसी मुहल्ले में गया, जहां के कच्चे घरों की औरतों ने कल उसे खाना दिया था. वहां जाकर वह एक पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर बैठ गया और कहने लगा, "मैं मिट्टी हूं. है कोई खरीददार इस मिट्टी का?"

लेकिन सब दिन त्योहार नहीं होते और सब समय लोगों के दिलों में दया पैदा नहीं होती. वह आदमी शाम तक भूखा बैठा रहा, किसी ने पानी तक को न पूछा. उलटे, कल दया दिखानेवाली औरतों ने आज मुंह बिचकाते हुए कहा, "मुए को मुफ्त का खाने की चाट पड़ गयी लगती है." मगर वह आदमी वहां से हिला नहीं. जाये तो कहां जाये? करे तो क्या करे? गधा उसके पास नहीं, फावड़ा उसके पास नहीं, टोकरा उसके पास नहीं, और खुदा की नेमत मिट्टी भी जमीन के मालिकों की मिल्कियत बन गयी है. वह हाथों से भी मिट्टी खोदने को तैयार था, लेकिन डरता था, जमीन का कोई मालिक आकर उसके हाथ भी काट डाले तब?

शाम को मुहल्ले के मर्द काम-काज से लौटे तो उस आदमी ने फिर हांक लगायी, "मिट्टी ले लो. . . मिट्टी!"

"कहां है मिट्टी?" लोगों ने हैरान होकर पूछा.

"मैं हूं. . .मैं मिट्टी हूं!"

"पर तुम तो लीपने के न पोतने के, तुम्हें लेकर कोई क्या करेगा?"

"मैं खुदाई जानता हूं, मुझसे खुदाई करा लीजिए."

"क्यों मजाक करते हो मियां! हमारे पास कौन-सी जमीन-जायादाद है कि तुमसे खुदाई करायें? खेत हमारे पास नहीं, बाग-बगीचे हमारे पास नहीं, कोई कुएं-बावड़ी या नहर-तालाब भी हमें तुमसे नहीं खुदवाने. टूटे-फूटे कच्चे मकान हैं और उनमें कोई खजाने नहीं गड़े हुए हैं. खुदाई करनी है तो कहीं और जाकर करो."

किसी और ने कहा, "मेहनत-मजदूरी करो मियां, जैसे हम करते हैं. यहां आकर भीख मांगने बैठ गये, इससे तो अच्छा होता कोई काम खोजते!"

उस आदमी को बड़ी शर्म आयी, क्योंकि वह भिखमंगा नहीं था और मेहनत की ही कमाई खाना पसंद करता था. शर्मसार होकर वह वहां से उठकर चल दिया.

काम की तलाश में भटकता हुआ वह एक कब्रिस्तान के पास से गुजर रहा था कि वहां उसे एक आदमी कब्र खोदता नजर आया. वह उसके पास जाकर बोला, "क्यों भाई, क्या मुझे भी कब्र खोदने का काम मिल सकता है?"

कब्र खोदनेवाले आदमी ने मजाक में कहा, "तुम तो मियां, खुद मुर्दे जैसे हो रहे हो. क्या खुद अपनी कब्र खोदना चाहते हो?"

उस आदमी ने एक पल सोचा और कहा, "नहीं, मैं उन माटीमिले मालिकों की कब्र खोदना चाहता हूं, जिन्होंने मुझे जीते-जी मार डाला है." □

● बी-3/4, राणाप्रताप बाग, दिल्ली-110007.

CC-0. In Public Domain...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर

जैसा देखा—जैसा पढ़ा : चचा प्रभाकर

▣ श्रीकांत गोयलीय

इतिहास खुद को दुहराता हो या न दुहराता हो, मगर हर सूरत में दिशा और दृष्टि अवश्य प्रदान करता है... और इसका प्रसंग बनते हैं कुछ विशिष्ट व्यक्तित्व! साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में भी श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर सौभाग्य से आज भी हमारे बीच एक ऐसे ही ऐतिहासिक व्यक्तित्व के रूप में मौजूद हैं. लेख हो या संपादकीय अथवा रपट, प्रभाकरजी ने इन्हें बोझिलता से बचाये रखकर बड़ी सहज शैली और सरल भाषा में जीवन की उन अबूझ और गुरु-गंभीर व्यावहारिक प्रक्रियाओं को प्रस्तुत किया, जो जन सामान्य की पीड़ा और व्यथा को उजागर करती हुई हमेशा कुछ कर गुजरने की सोच और प्रेरणा प्रदान करती हैं. ऐसे विशिष्ट व्यक्तियों की कलम और जीवन में कितना तालमेल होता है, यह जानना अपने-आप में रोचक होता है. प्रस्तुत है उनके कुछ आम मगर जीवन प्रेरक प्रसंग... कि जीना अगर एक कला है तो वह कला कैसे हासिल की जा सकती है—

"मैं कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' लालकिले से बोल रहा हूं."

"लो भई, अपना प्रभाकर बोल रहा है, मजा आ गया."

"पिताजी, यह प्रभाकर कौन है. क्या ये 'भूले हुए चेहरे' वाले तो नहीं हैं?"

"हां, ये वही प्रभाकर हैं. जरा सुनने दे, जालिम क्या गजब का बोल रहा है."

यह घटना 15 अगस्त, 1950 की है, जब मैं अपने चचा प्रभाकर को जान पाया था. उसके बाद तो अपने चचा को जानता चला गया. और यूं जाना कि बस तबीयत भूलने को नहीं करती है.

जनवरी, 1952 में गोयलीय जी द्वारा संपादित 'जैन जागरण के अग्रदूत' पुस्तक प्रकाशित हुई. उसमें अपने चाचा प्रभाकर की प्रस्तावना 'यह एक जलती मशाल है' देखी तो देखता रह गया और पढ़ा तो पढ़ता रह गया. ये गोयलीय जी तो किसी को खातिर में ही नहीं लाते हैं, ये प्रभाकर जरूर कोई बड़े भारी लेखक होंगे, जिनके सर्टिफिकेट की गोयलीयजी भी कीमत समझते हैं. इस तरह मुझ पर इन प्रभाकरजी का एक और रौब गालिब हुआ.

सन् 52 में 'आकाश के तारे : धरती के फूल' सामने आयी. पुस्तक क्या लिखी है, बस जी करता है कि आकाश के तारे देखता चला जाऊं और धरती के फूल सूंघता चला जाऊं.

मन में एक प्रश्न उठा, (कवि का प्रसंग पढकर) 'क्या लोग इस तरह भी रहते हैं, जिनके अपने ही उन्हें नहीं समझते हैं. घर के बाहर जिस कार्य की प्रशंसा होती है, उसी श्रम का घर-आंगन में मूल्य नहीं आंका जाता है?'

इस किताब के बाद 'जिंदगी मुस्करायी,' 'माटी हो गयी सोना,' 'बाजे-पायलिया के घुंघरू' और 'दीप जले : शंख बजे.'

'जिंदगी मुस्करायी' पुस्तक पढ़ने के बाद, इंसान में जीने की तमन्ना जाग उठती है. पाठक का लक्ष्य होगा, 'जियो और इस तरह जियो कि तुम्हारे जीने में लोगों को लुत्फ आये.'

प्रभाकरजी के साहित्य के आकर्षण ने मुझे सहारनपुर जाने को बाध्य किया. स्टेशन से कुछ ही कदमों की दूरी पर बायें विकास-प्रेस है. यहीं चचा का दफ्तर है. यहां जुझारू लोगों का विकास होता है. नये जीवन की ज्योत्सना मिलती है.

उमर खैयाम अपनी रूबाइयां कहने के लिए साकी की मौजूदगी जरूरी समझते थे. प्रभाकरजी को अपने पेन-स्केच लिखने के लिए गांधी-पार्क के एक बेंच की जरूरत होती है. गांधी पार्क के लहलहाते हुए पौधों से, झूमते हुए पेड़ों से, चहचहाती हुई चिड़ियों से और गमकते हुए फूलों से, हमारे चचा को लिखने की प्रेरणा प्राप्त होती है. जिन फूल-पत्तियों से चचा को प्रेरणा मिलती है, उन्हीं फूल-पत्तियों को कोई नोच-खसोट रहा है. चचा इस तकलीफ को बर्दाश्त नहीं कर पाते हैं और बेदर्दी से फूल-पत्ती तोड़नेवाले पर बरस पड़ते हैं. मूड आफ हो जाता है और घर की तरफ चल पड़ते हैं.

रास्ते में देखते हैं कोई कालेजियट साइकिल पर सवार है, केले के छिलके बीच सड़क पर डालते हुए बढ़ जाता है. मेरे चचा कराह उठते हैं और केले के छिलके गर्द-गोलक में डलवाते हैं.

मसूरी में घूमते हुए लाइब्रेरी रोड पर आ गये हैं. इतने में ही कोई शोख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़की पीक से सड़क को रंगीन कर देती है. आप इस हरकत को बर्दाश्त नहीं कर पाते हैं और हलालखोर (जमादार) को चाय के पैसे देकर सड़क का हिस्सा स्वच्छ करवा देते हैं.

चचा के पात्र चलते-फिरते इंसान होते हैं. जिनसे हम अपना दामन बचाकर चलते हैं, उन्हीं में प्रभाकरजी घुल-मिल जाते हैं. उन्हीं व्यक्तियों के इंटरव्यू लेते हैं. किसी होटल में जायेंगे तो बैरे का इंटरव्यू लेंगे. हर की पेड़ी पर जायेंगे तो धोबन को बहन कहकर संबोधित करेंगे. दिल्ली स्टेशन पर होंगे तो लालू उस्ताद की बिरादरी से बात करेंगे.

हां देखिए, चचा कुंजड़न से बातें कर रहे हैं:

"सच-सच बताओ बहन, दो आने लेकर तुम सुस्त क्यों हो गयी थी?"

करुणा से उसका गला रुंध गया. खांसकर उसने कहा, "बाबूजी, घर में बीस दिन से लड़का बीमार पड़ा है और कई दिन से बताशे मांग रहा है. चलते समय उसे कह आयी थी कि बेटा, एक आने का नमक और एक का तो तेल लाना ही है. गुच्छियां तीन आने में बिक गयीं तो तेरे लिए बताशे जरूर लाऊंगी. अब मैं सोच रही थी कि घर जाते ही वह बताशे मांगेगा और दुखी होगा. वैसे तो बाबूजी, रोज कहां बच्चों को मिठाई खिलाई जाती है, पर बीमारी-सिमारी में तो बच्चे का मन रखना ही पड़ता है."

चचा ने पावभर बताशे उसके पल्ले में डाल दिये. अब उस मालन का जमीन पर पैर नहीं पड़ रहा है—छाती से बताशे चिपकाये जैसे वह उड़ी जा रही है.

चचा प्रभाकर इंदौर की सड़क पर देखते हैं:

...गिड़गिड़ाकर नंदा ने कहा, "सेठजी, मैं कई दिनों से भूखा हूं, जान निकली जा रही है. कुछ पूड़े मुझे भी दीजिए."

"अबे भूखा है, तो शहर में जाकर मांग. ये हनुमानजी के पूड़े तुझे कैसे दे दूं?"

"शहर जाने की हिम्मत नहीं है सेठजी, बीमारी ने मुझे चर लिया है. भूखे की जान बचाने से तो हनुमानजी आप पर प्रसन्न ही होंगे."

"अच्छा रहने दे, मुझे तेरे उपदेश की जरूरत नहीं है."

बड़े प्रेम से बंदर जिमाकर सेठजी लौटे तो देखा—नंदा रास्ते पर पड़ा है. घृणा के स्वर में आप ही आप बोले, "अभी तो बदमाश भूखों मर रहा था, इतने में सो भी गया."

यह सुनकर भी नंदा नहीं जगा. जागने को वह सोया ही न था.

सन् 1934 में जब चचा बंबई गये तो वहां से आकर ताजमहल होटल के अनुभव, मराठा चित्र मंदिर में किस क्लास का टिकट लिया, मैरीन ड्राइव और चौपाटी की रंगीनियों को न सुनाकर सिर्फ यह सुनाया—

"...यह क्या हो रहा है, भाई?"

"चंदा."

"कांग्रेस के लिए?"

"नहीं."

"फिर?"

"बिहार में भूचाल से हजारों आदमी मर गये और सैकड़ों गांव उजड़ गये हैं."

"अच्छा!"

कुछ सोचकर उसने कहा, "फिर तुम मुझसे क्यों नहीं मांगते कुछ चंदा?"

युवकों के अट्ठहास से वातावरण गूंज उठा.

भिखारी झेंप-सा गया. उसका आत्माभिमान तड़प उठा. उसने अपना हाथ जेब में डाला, पूरे दिन की कमाई मुट्ठी में ली और उसे सड़क पर एक झटके के साथ बिखेरकर वह एक ओर को दौड़ गया.

स्वयंसेवकों ने गिने, सवा आठ आने थे. चौरस्ते पर बिखरी हुई भिखारी की यह निधि देखकर बंबई की ऊंची अट्टालिकाएं शर्म से नीचे देखने लगीं.

चचा प्रभाकर, अपने पुत्र श्री अखिलेशजी (भाईसाहब) के ही पिता नहीं हैं, अपितु और बहुत से व्यक्ति उन्हें अपना धर्म-पिता मानते हैं. चचा भी उन बेटे-बेटियों के सुख-दुख की चिंता में लीन रहते हैं.

इस समय चचा तेज कदमों से जो चल रहे हैं, पूछिए मत कहां जा रहे हैं. वे तो मुझसे कह गये हैं, "मैं जरा शकुंतला की फीस दे आऊं, वरना बी. ए. करने से रह जायेगी."

मैं पूछता हूं, "चचा, यह शकुंतला कौन है."

"बेटे, यह शकुंतला मुझे पिताजी कहती है. अब मैं अपना फर्ज निभाऊं या नहीं...."

दूसरे दिन सुबह चचा के कमरे में जाता हूं तो देखता हूं, चचा गायब हैं. बहुत गुस्सा आता है. सुबह भी नहीं मिलते हैं. बाद में मालूम होता है अपने धर्म पुत्र अरविंद के लिए मकान खोजते फिर रहे थे.

रास्ते में बालक धन्नो ने सड़क पर बुहारी लगाते हुए चचा को सलाम कहा. चचा ने उसका आदाब कबूल किया. खैरियत पूछी. धन्नो ने कहा, "बाबूजी, भूख लगी है." चचा उसे रुपया थमाकर आगे बढ़ गये.

चचा के पत्र लिखने की शैली देखकर इच्छा होती है, काश इस तरह के पत्र लिखने हम लोगों को भी आये होते. जिनके पास ये खत आते हैं, वे इन्हें संजोकर रखते हैं.

नया जीवन, (प्रभाकरजी द्वारा संपादित, प्रकाशित मासिक पत्र) पाठक पढ़ते हैं और इस तरह के पत्र अपने संपादक को लिखते हैं—

"परमहितैषी बंधु 'प्रभाकरजी'

... आप इस रोमानी दुनिया में भी इतना शुद्ध, पवित्र और नैतिकता-पूर्ण साहित्य सृजन कर रहे हैं और जनता में इन कीमती मोतियों को ज्वार-बाजरे की तरह फेंक रहे हैं कि जी चाहता है कि आपके 'नया जीवन' की हजारों कापियां अपनी ओर से पुस्तकालय और पाठकों को अमूल्य भिजवाता रहूं, किंतु मन की साध कभी किसी की क्या पूरी हुई है."

चचा प्रभाकर के किस-किस रंग का बखान करूं. भारत-भारती का तराशा हुआ हीरा, अपनी चमक से हम सभी को मुग्ध कर रहा है. □

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरमेध

• पंतुल जोगाराव

दरअसल कृष्ण बुद्धि में कमजोर नहीं था, बल्कि पढ़ाई में चुस्त और होनहार ही था. फिर भी परीक्षा से उसे डर लग रहा था.

उसका डर यही था कि आगामी पब्लिक परीक्षा में वह अपना प्रथम 'स्थान' बनाये रख सकेगा या नहीं. स्कूल में उसका मुकाबला करने वाले केवल दो या तीन ही छात्र थे. एक तो माधव था—फारेस्ट रेंजर साहब का लड़का. दूसरा मोहन था. तीसरी लड़कियों में से सुधा रानी थी—अवधानी जी की बेटी.

किसी भी तरह. . .इन सभी से आगे बढ़ना होगा. इस इम्तहान में उसी को प्रथम स्थान मिलना चाहिए.

क्योंकि डैडी ने कहा था कि उसके जीवन में यह परीक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है और यही एक खास 'टर्निंग प्वाइंट' है. डैडी उसके लिए स्वर्णिम भविष्य तैयार कर रहे हैं तो उसके बाद उसका जीवन ही बदल जायेगा.

एक ऐसा आश्चर्यजनक स्तर प्राप्त करने का अवसर उसके लिए है, जिसकी मोहन, माधव और सुनील—इनमें से कोई कल्पना भी नहीं कर सकता.

लेकिन. . .जब से उसने मधुसूदन की बात सुनी थी; तब से उसका मन स्थिर नहीं था.

उसने जो कुछ बताया था, क्या वह सच था? क्या असल में ऐसा भी होता है? न मालूम—क्यों नहीं होना चाहिए? मधुसूदन ने किस प्रकार विश्वास दिलाया था. . .

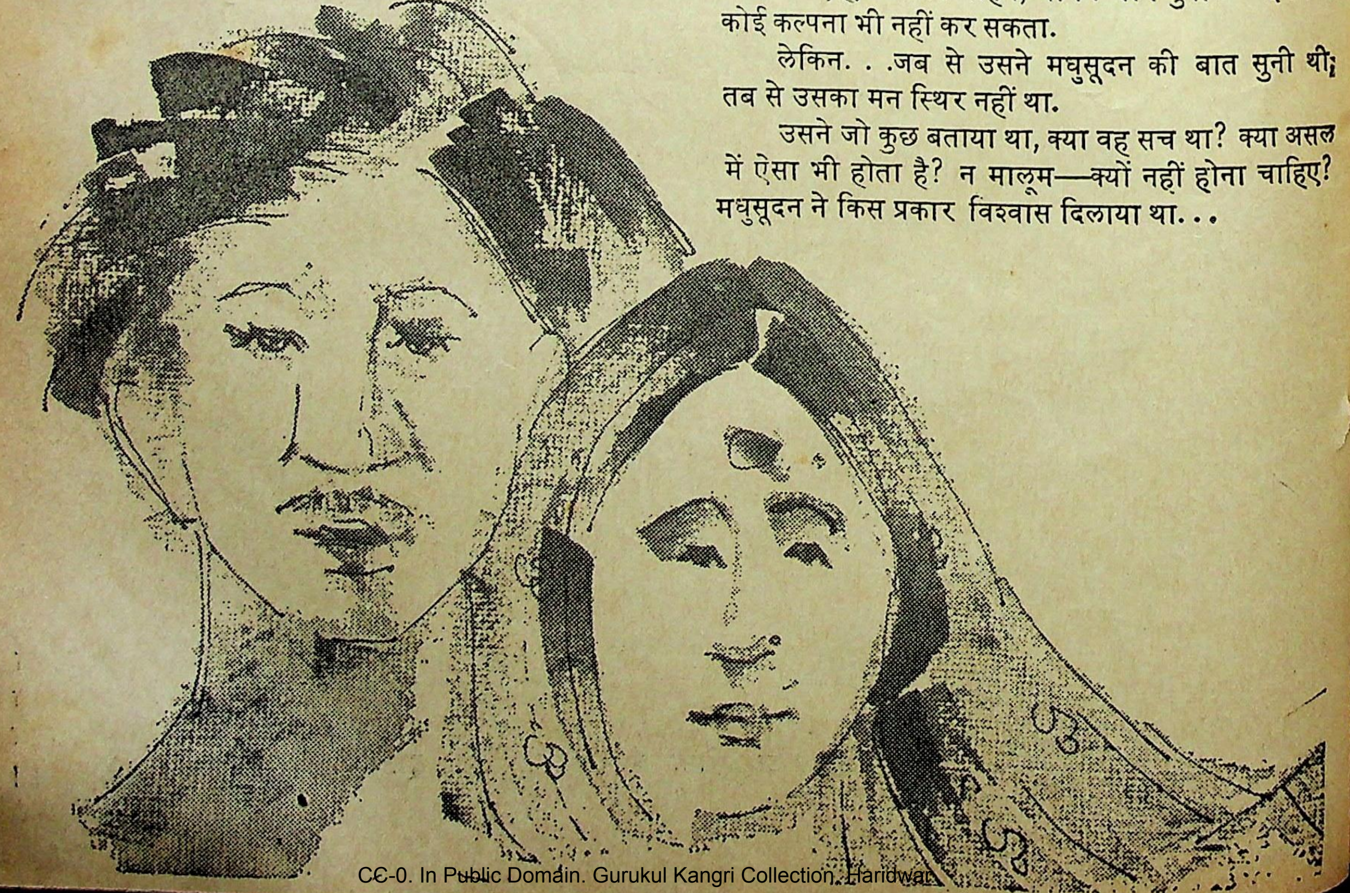

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतियोगिता का क्षेत्र चाह कोई भी, कितना भी दुर्गम क्यों न हो उसे सुगमता से पार करवाने के दावेदार आज हर कहीं मौजूद हैं . . . इनका सहज मार्ग है प्रतियोगी को ऊंची छलांग के लिए तैयार करना . . . मगर इस छलांग से दूसरे छोर पर पहुंचा प्रतियोगी सिवाय हाथ मलने के क्या कुछ हासिल भी कर पाता है? प्रस्तुत है ऐसे ही दावेदारों के प्रलोभनों में फंसे एक पिता-पुत्र के स्वप्न भंग की तेलुगू कहानी--

यह सोचते ही कृष्ण के शरीर से पसीना छूटने लगा. उसे अपना दिल दुगुनी तेजी से धड़कता हुआ महसूस हुआ. उसके शरीर में हल्की-सी सिहरन होने लगी और उसको लगा कि किसी अनजान दुनिया के दरवाजे उसके लिए खुल रहे थे. उसकी सांस उसी को गरम लग रही थी.

कृष्ण की दृष्टि पुस्तक पर नहीं टिक रही थी. अक्षर उसे अस्पष्ट-से दिख रहे थे.

शाम को मधुसूदन त्रिकोणमति की कोई समस्या हल करने के लिए उसके पास आया था.

मधुसूदन उसी की कक्षा का था, लेकिन उसका सेक्शन दूसरा था. वह किसी बड़े ठेकेदार का पुत्र था.

कृष्ण ने उसकी समस्या को हल करके उसे समझा दिया.

मधुसूदन अपनी किताबें लेकर जाने के लिए उठा. कृष्ण उसके पीछे दहलीज पार करता फाटक तक आया.

मधुसूदन को विदा करते हुए अनजाने ही कृष्ण ने एक सवाल किया, "अरे हां, तुम अकेले ही पढ़ रहे हो या किसी के साथ कंबाइंड स्टडी कर रहे हो?"

"मैं तो अकेले ही पढ़ रहा हूं. और किसी के साथ पढ़ने के लिए मेरे पिताजी नहीं मानेंगे."

"वह क्यों?"

मधुसूदन पल भर के लिए कुछ नहीं बोला. फिर कुछ सोचकर उसने कहा, "तुमको एक रहस्य बताऊंगा. डेड सीक्रेट. प्रामिस करो कि किसी से नहीं कहोगे."

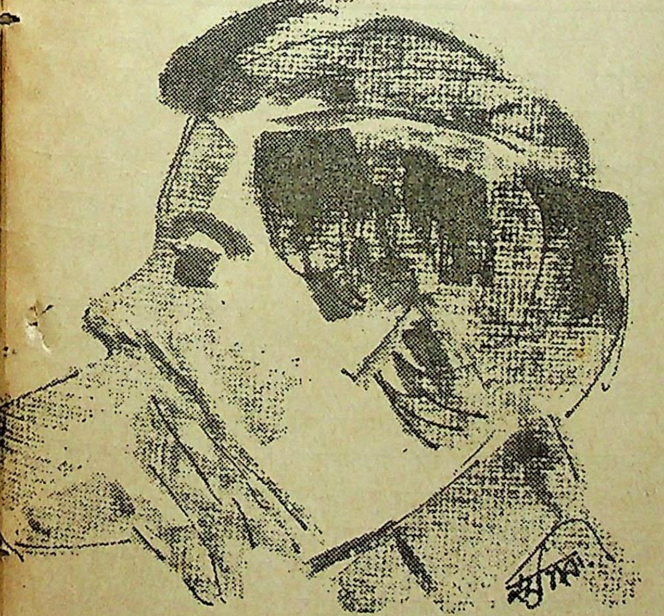

"प्रामिस." कृष्ण को यह सब अजीब लग रहा था.

"कृष्ण! जो कुछ मैं बताने जा रहा हूं वह बहुत ही गोपनीय है, अपने मन में ही रखना. अगर किसी से कह दिया तो सत्यानाश हो जायेगा."

"बोलो." कृष्ण ने कमजोर आवाज में कहा.

"ऐसा पता चला है कि अपनी पब्लिक-परीक्षा के सभी प्रश्न पत्र आउट हो गये हैं. . .और सभी प्रश्नपत्रों का एक-एक सेट तीन सौ में बिक रहा है. सभी को तो नहीं. . .बड़े ही सीक्रेट तौर पर बहुत कम लोगों के लिए ही. मेरे पिताजी के एक मित्र ने कहा कि वे मेरे लिए प्रश्नपत्रों का एक सेट प्राप्त करेंगे. पिताजी उन्हें पैसा भी दे चुके हैं. समझे?"

कृष्ण को ऐसा लगा मानो उसके पैरों तले की जमीन हिल उठी हो. उसे लगा कि किसी भूत ने उसके सामने आकर बात की है. उसे लगा कि उसका दिल रुक कर फिर धड़कने लगा है, हाथ-पैर चेतना रहित हो गये हैं और मस्तिष्क जड़वत हो गया है. कोई अनजान भय उसमें भर गया और उसका शरीर कांप उठा. उसके अंदर कोई कमजोर अंतड़ी टीसने लगी.

"अरे मधु! ऐसे प्रश्नपत्रों का एक सेट मेरे लिए भी प्राप्त कर सकोगे?"

मधुसूदन चौंक उठा. उसे उम्मीद नहीं थी कि कृष्ण के मुंह से ऐसी बात निकलेगी. उतावली में उसने बता तो दिया, मगर दूसरे ही क्षण वह भय से कांपने लगा.

मधुसूदन ने तनिक संकोचकर कहा, "तुम्हारे डैडी न मालूम क्या कहेंगे. उनसे कहकर देखो. अगर वे स्वयं मेरे पिताजी से मिलकर बात करेंगे तो ठीक रहेगा. तीन सौ देने से मेरी तरह तुम्हें भी प्रश्नपत्र मिलेंगे."

बार-बार चेतावनी देकर मधुसूदन अपने घर चला गया.

मधुसूदन की कही बात कृष्ण के दिमाग को कीड़े की तरह काटने लगी. चाहे पैसा खर्च हो भी जाये, मगर परीक्षा के प्रश्नपत्र पहले ही मालूम हो जायें. . .और वह उन्हीं प्रश्नों के लिए खूब तैयारी कर जाये. . . तो बेशक उसको 'फर्स्ट रैंक' मिलकर रहेगा.

उसको लगा कि उसकी आशाओं और सपनों को साकार करने के लिए अधिक आसान रास्ता दूसरा कोई नहीं है. भले ही वह दिन-रात एक करके सारी पुस्तकें आद्यांत पढ़े और दिमाग खराब कर ले. . .तो भी यह पता नहीं कि परीक्षा में कौन-से सवाल आयेंगे और उन्हें वह कैसे हल कर पायेगा. सब संदिग्ध है. ऐसी स्थिति में मधुसूदन का बताया रास्ता कितना सुखमय है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन क्या वह रास्ता गया-गुजरा नहीं है?
शायद है.
शायद नहीं है.
हां. . .शायद नहीं. . .नहीं. . . शायद है. . .हां. . . नहीं. . .
शायद हां. . . नहीं. . . हां. . .नहीं. . हां. . न. . .

डॉक्टर राघव थकान से चूर होकर कुर्सी पर धम्म-से बैठ गया और सिगरेट सुलगा लिया. बाहर कोई मरीज नहीं था. घड़ी दस बजकर बीस मिनट का समय दिखा रही थी.

सिगरेट, दो-चार कश खींचकर उसने एश-ट्रे में डाल दी. फिर मेज की दराज खींचकर सुबह की डाक से आया हुआ लिफाफा निकाला. वह अंग्रेजी में टाइप किया हुआ एक पत्र था. शायद दसवीं बार वह उसे पढ़ने लगा. पढ़कर उसने संतोष की सांस ली.

वह असीम राहत अनुभव कर रहा था. उसे लगा कि पिछले कुछ महीनों से उसका मस्तिष्क जिस तनाव से गरम हो उठा था, वह दूर हो गया है. उसके शरीर का कण-कण जिस बलवती इच्छा की पूर्ति के लिए व्यथित हो रहा था, उसके पूरी होने का शुभ दिन बहुत शीघ्र आ रहा है.

राघव के होंठों पर तृप्ति से भरी एक मुस्कान चमक उठी और लुप्त हो गयी.

वह दिन जबकि उसके सपने सच होनेवाले हैं. . .

वह दिन जब वह अपने इच्छित ऊंचे शिखर पर पहुंचने वाला है. . .

और उसके ज्ञान, बुद्धि-कौशल, उसके विचारों और योजनाओं को एक सुंदर रूप प्राप्त होने वाला है.

प्रभुदास कितना अच्छा है.

इंजीनियर प्रभुदास का सहयोग न मिला होता तो शायद उसकी कोशिश इतनी दूर तक नहीं पहुंच पाती. अगर प्रभु उसका परिचय गौतम से नहीं कराता. . . .

और ऐसा नहीं हुआ होता. . .

तो वह, उसका क्लिनिक, ये दुर्भाग्यपूर्ण दिन. . .

इन भूखे लोगों के झूठे अभिनय, फीस न देने के लिए इनकी गरीबी का रोना, दयनीय कहानियां. . .इन सभी से बचने के दिन शायद उसके जीवन में नसीब नहीं होते. इस जिंदगी में थ्रिल नहीं है. आशाजनक भविष्य नहीं है. . .

वह जानता है कि उसे क्या चाहिए. . .

इसीलिए उसे इतनी व्यथा है. उसके लिए चाहे कितना भी पैसा खर्च करना पड़े, वह पीछे नहीं हटेगा.

इकलौते पुत्र कृष्ण के लिए. . .उसकी जान. . .अमरावती के लिए. . .और अपने लिए.

आने वाले अच्छे दिनों के लिए. . .

चाहे कितनी ही बाधाएं आयेंगी, उनका सामना उसे करना ही होगा. एक बड़े अर्से की अपनी इच्छा पूरी करने के लिए चाहे कितनी भी कीमत चुकानी पड़े, उसके लिए वह तैयार है.

राघव ने खुशी की सांस ली.

आसपास बिखरी कहानियां

सरसती माता की जै-जै

▣ शंकरदयाल सिंह

बिहार के हर कस्बे और ग्रामीण इलाके में वर्ष भर किसी न किसी पर्व-त्योहार पर चंदा वसूली का रमणीय धंधा चलता रहता है. इसका नेतृत्व गांव के दादा-नवयुवकों के हाथों में होता है.

वसंत पंचमी के अवसर पर युवाओं ने सड़क को बड़े-बड़े शिलाखंडों से ब्लाक कर दिया और बीच में बल्ला भी लगा दिया. उनका नेता हुंकारा, "कोई भी गाड़ी बिना दसटकिया दिये पार नहीं जायेगी, सब तैयार हो जाओ."

तभी एक ट्रक आया, "भइया, रास्ता क्यों जाम किये हो, खोल दो."

"पता नहीं है, सरसती माता की पूजा है, चलो निकालो पचीस रुपये."

ड्राइवर ने एक रुपये का नोट निकाला, "लो भइयो, अब जान छोड़ो, धनबाद से आ रहा हूं, अमृतसर जाना है."

"यह क्या कोई खैराती भिखमंगी है. दस से नीचे तो हम बात ही नहीं करते." लड़के दहाड़े.

हुज्जत-हवाला चल ही रहा था कि पांच-सात गाड़ियां और आकर पीछे लग गयी. पहला ट्रकवाला किसी प्रकार पांच रुपये का नोट फेंककर जान छुड़ाकर भागा.

उसके पीछे एक एंबेसडर गाड़ी थी, जिस पर एक सभ्रांत परिवार सवार था. दो लड़कियां, मां-बाप आदि. लड़कों ने देखा तो एक जोर-से चिल्लाया, "सरसती माता

उसके सपनों के साकार होने का मुहूर्त. राघव आधा घंटा और क्लिनिक में व्यतीत कर घर के लिए चल पड़ा.

खाना खाते समय राघव ने डायनिंग टेबिल की बगल में सकुचाते हुए खड़े होकर टेबिल के छोर को हाथ से रगड़ते हुए अपनी तरफ भीत नयनों से घूर रहे कृष्ण को गौर से देखा. . .

"व्हाट इज द मैटर व्वाय!" उसने प्यार से पूछा.

कृष्ण चौंक उठा. देर तक वह सोचता रहा कि मन की बात कहे या न कहे.

आखिर कृष्ण ने हिम्मत की और उस दिन शाम को मधुसूदन ने उससे जो कुछ कहा था, वह सब धीरे-से कहा.

उसकी बात सुनकर राघव अवाक् हो गया.

अमरावती की स्थिति भी वैसी ही थी.

राघव के हाथ का कौर उसी तरह रह गया था. उससे पहले अमरावती ही सचेत हो उठी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की. . ." सबों ने वाक्य पूरा किया, "जै-जै. . ."

दो-चार लड़कों ने अपने हाथ भी अंदर डाल दिये. पिता ने दस का नोट फेंका और आगे बढ़ा.

कुछ देर में एक अड़ियल ट्कवाला आकर रुका, "हटाओ यह सब. . .सालों ने नाक में दम कर रखा है. . . बाप की कमाई है, जो हर कदम पर चंदा."

पांच-सात युवक तब तक उसके बोनट के ऊपर खड़े हो गये, "पचीस रुपये निकालो. . ."

"बेटा, नीचे उतरो. . .और सामनेवालो हट जाओ, नहीं तो ट्रक सीने पर चढ़ाकर न निकाल दिया तो मेरा नाम सरतेज सिंह नहीं, कुत्ता सिंह." वह बड़बड़ाया.

अब दोनों ओर से सरसती माता की जगह भीम-जरासंध मल्लयुद्ध की तैयारी शुरू होने लगी. ड्राइवर को खलासी ने समझाया, "ओस्ताद, बात बढ़ाने से का फायदा, दे दो सालों को दो रुपया और बढ़ो आगे."

लेकिन ड्राइवर ने आंखें तरेरकर कहा, "तू साला डरता है, मैं इन हरामजादों को. . . एक भी नहीं दूंगा."

बात बतंगड़ का रूप धारण करने ही वाली थी कि बगल की झाड़ी से निकलकर दो 'ओस्ताद टाइप' के युवा बाहर आये और उनमें से एक चिल्लाया, "अरे हरेराम, छोड़ साले को, नहीं देता है तो अब क्या मारपीट करना. आज का कोटा पूरा हो गया है, पूरे एक सौ पचास का. न हुआ रहता तो बच्चू को यहीं मजा चखा देते. चल, हट." कहते हुए उसने अपने साथियों को पीछे बुला लिया. रास्ता साफ कर दिया गया तथा सभी गाड़ियां अबाध रूप से आगे बढ़ गयी और यह 'सरस्वती माता' के भक्तों की टोली आज का कोटा पूरा कर बगल के 'देसी शराब का ठेका' की गुमटी में प्रवेश कर गयी, यह नारा लगाते हुए—"सरसती माता की. . .जै. . . जै. . .!" □

"बबलू. . ." उसकी आवाज तनिक कांप रही थी. उसकी आंखों पर आंसुओं की परत दिख रही थी.

"बबलू. . .तू ब्राइट स्टूडेंट है. . .तेरे मन में ऐसे विचार आना. . .छिः. . .मुझे अच्छा नहीं लग रहा है. . .असल में पहले उस कमबख्त को कहना चाहिए जिसने तेरे दिमाग में ऐसा भूत बिठा दिया है. नहीं रे! हमें ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए. तू लगन से पढ़. वे छोटे और अंधेरे रास्ते हमें कतई नहीं चाहिए. मेरी बात सुन. . ."

राघव ने एक पल के लिए आंखें मूंद लीं और फिर खोलीं. उसने एक लंबी आह भरी. न मालूम उस पल भर में उसके मस्तिष्क में कौन-से पर्वत हिल-डुल रहे थे.

अचानक उसने कृष्ण की तरफ देखते हुए कहा, "ठीक है कृष्ण. मधुसूदन के फादर से मैं बात करूंगा."

अमरावती आश्चर्य में डूबी उसकी तरफ देखने लगी. राघव ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया.

"बाय द बाय, अमू डियर . . अगले इतवार को ही मेरा जाना होगा. . .आज ही पत्र मिला है. सारा इंतजाम पूरा हो गया है. . .तुम्हारे मम्मी-डैडी को कल फोन करूंगा कि वे तुम्हारी मदद के लिए आकर कुछ समय के लिए यहां रहें."

पिता की बात सुनकर कृष्ण खुशी से झूम उठा. उसकी आंखें चमकने लगीं. असीम आनंद से वह उछलते हुए अपने कमरे में चला गया.

उसके कुछ दिन बाद. . . डॉक्टर राघव के नाम बंबई में होटल के पते पर एक तार आया.

मधुसूदन के पिता ने बड़ी मेहनत से जो प्रश्नपत्र प्राप्त किये थे, उनमें से परीक्षा में एक भी नहीं आया था. परीक्षा की वह सारी कहानी झूठी थी. . .

कृष्ण की आंखों में अंधेरा छा गया था. उसके शरीर में अशक्तता भर गई थी. उसका मन घायल होकर टूट गया था. इस विषम स्थिति में वह परीक्षा कक्ष में बेहोश हो गया था और उत्तर-पुस्तिका में एक अक्षर भी नहीं लिख सका था.

उस शाम कृष्ण का शरीर द्रुत गति से दौड़ रही मेल-गाड़ी के पहियों के नीचे हजारों टुकड़े होकर अत्यंत भयानक रूप में बिखर गया था. . .

होटल ब्वाय ने वह तार डॉक्टर राघव को पहुंचाने के लिए उसके कमरे में दरवाजे पर दस्तक दी. बड़ी देर होने पर भी दरवाजे के न खुलने पर बैरे को आश्चर्य भी हुआ और भय भी.

कमरे के भीतर—'सोने के अंडे देने वाले पक्षियों' जैसे दूसरे देशों में जाकर अपने ज्ञान को भुनाकर लाखों की कमाई करने की बलवती इच्छा से वह निकला था—जब मालूम हुआ कि वीसा, पासपोर्ट, नियुक्ति का आदेश और आखिर ट्रैवलिंग एजेंसी—सब के सब बिलकुल झूठ हैं—इस दुस्सह सत्य का पता चलने पर. . . उसके दिल के टुकड़े-टुकड़े हो गये थे.

उस अपमान और घोर पराजय को बर्दाश्त न कर पाने से मुट्ठी भर नींद की गोलियां खाकर डॉक्टर राघव ने आत्महत्या की थी. . .

यह बात बेचारा वह होटल ब्वाय क्या जानता था?

समस्याओं का समाधान आत्महत्या नहीं है. किंतु जिस प्रकार कई फूल, जिन्हें विकसित होकर सुगंध बिखेरना है, सूखकर झर जाते हैं, उसी प्रकार सदैव जाने कितने ही दुर्भाग्य पूर्ण जीवन असमय में ही समाप्त होते जा रहे हैं. ऐसा क्यों?

इसलिए कि—केवल उसी स्तर पर, उसी पद्धति से, उसी वर्ग के मनुष्यों का ही नहीं—बल्कि विविध स्तरों पर, अनेक तरीकों से, सभी वर्गों के व्यक्तियों का भी—नरमेध हो रहा है. □

▣ अनुवाद : के. वी. नरसिंह राव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी में जिम्मेदार आलोचकों की संख्या कम ही है

साक्षात्कार

निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, मन्नू भंडारी और राजेंद्र यादव के साथ हिंदी कथा-साहित्य में जिन लोगों ने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनायी है, उनमें उषा प्रियंवदा एक सुपरिचित हस्ताक्षर हैं. कथाकारों की यह पीढ़ी एक ऐसी 'नई चीज' लेकर आयी थी, जो उन्हें जैनेंद्र और यशपाल की पीढ़ी के कथाकारों से अलग करती थी. . . और यह चीज थी अपने यथार्थ और अपनी सच्चाई से जुड़ा रचना कर्म. इस बातचीत के प्रकाशित होने तक उषाजी अपने भारत-प्रवास के दौरान दिल्ली में उपस्थित हैं. यहां प्रस्तुत है उनके कथा लेखन के बहाने हिंदी-कहानी पर उषाप्रियंवदा और अवधनारायण मुद्गल के बीच खासतौर से 'सारिका' के लिए हुई एक लंबी बातचीत.

इस बातचीत के संदर्भ में राजकमल प्रकाशन की प्रबंध-निदेशिका श्रीमती शीला संधू के सहयोग के लिए हम उनके आभारी हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▣ उषाजी, आप जिस समय लिख रही थीं. . .तब नई कहानी आंदोलन की शुरुआत के साथ-साथ कहानी अपनी अस्मिता को स्थापित कर रही थी. . . साथ ही आलोचकों का एक वर्ग भी जुड़ गया था कहानी की इस नई विधा को स्वीकार करने के लिए. शायद यही वजह है कि उस वक्त कहानियों की चर्चा खूब हुई. . .जबकि आज किसी की भी कहानी की चर्चा बिलकुल नहीं हुई. . .यही वजह है कि आज की कहानियां उतनी याद भी नहीं रखी जा सकतीं. . .जितनी आपके समय की कहानियां. इसके लिए लेखन की स्तरीयता जिम्मेदार है या आलोचकों की अनुपलब्धि . . .या कहानी आंदोलन न होने वाली बात जिम्मेदार है?

देखिए, अगर ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो जिस समय मैंने लिखना शुरू किया था, निर्मल की कहानियां छप रही थीं, राजेंद्र, मन्नू, राकेश सभी कहानियां लिख रहे थे. उस समय का वातावरण दूसरा था. कहानी एक विधा के रूप में स्थापित हो चुकी थी, पर सभी लेखक उस विधा में नये आयाम खोज रहे थे, (इससे पहले कहानियां थीं, जैनेंद्रजी की, यशपालजी की) सभी अपने-अपने अनुसार कुछ अलग हटकर लिख रहे थे, इसीलिए नई कहानी का अपना विशिष्ट हस्ताक्षर रहा. रही बात चर्चा और आलोचना की, मुझे तो यह लगता था कि संपादक भी, जो कहानी पत्रिकाओं से जुड़े हुए थे, लेखकों और कहानियों में व्यक्तिगत रूप मे रुचि लेते थे. कहानी आंदोलन तो बाद में शुरू हुआ, उससे पहले तो कहानी थी और कहानी लिखनेवाले थे. अगर कोई अच्छी कहानी छपती थी तो उस पर चर्चा होती थी, बातचीत होती थी. मेरा अपना व्यक्तिगत अनुभव तो यही रहा. श्रीपतरायजी, जो 'कहानी' निकाल रहे थे, करीब-करीब सभी लेखकों को जानते थे, और चूंकि मेरे परिवार से उनके घनिष्ठ संबंध थे, वह मुझे बताते रहते थे, "वह कहानी जरूर पढ़ना" और उन्हीं ने एक दिन मुझसे कहा कि अब तुम्हारे लेखन में इतनी परिपक्वता आ गयी है कि मैं इस कहानी को 'कहानी' में छाप रहा हूं. शायद वह माहौल ही ऐसा था कि कहानी या कविता पर कोई न कोई चर्चा चलती रहती थी. इसलिए मैं यह नहीं कहूंगी कि नई कहानी आंदोलन की वजह से कहानियां चर्चित हुईं. यह जरूर है कि नई कहानी आंदोलन की वजह से, बहुत से नये पाठकों की दृष्टि इन कहानियों पर गयी. उस समय कहानी की कई महत्वपूर्ण पत्रिकाएं भी थीं, 'कहानी' का जिक्र मैं कर चुकी हूं. 'कल्पना', 'कृति', 'ज्ञानोदय' 'नई कहानियां', इन सभी पत्रिकाओं में जो भी कहानी छपती थी, उसे विशेष ध्यान देकर पढ़ा जाता था. शायद इसलिए कि हम लोग वास्तव में. . .कोई नई चीज लिख रहे थे. अलग हटकर कोई नई चीज लिख रहे थे. पाठक को कुछ साधारणीकरण-सा महसूस हुआ. हम लोग उस पीढ़ी के हैं, जिसमें इतना मोहभंग नहीं हुआ था, जितना आज की पीढ़ी में मुझे लगता है. हम लोगों ने स्ट्रगल भी इतना नहीं किया था. भारत की स्वतंत्रता के पीछे जो आदर्शवाद था, वह हमारी पढ़ाई-लिखाई में, हमारे वातावरण में था. इसलिए हमारी दृष्टि अपने ऊपर, इंसान के ऊपर और व्यक्तिगत संबंधों के ऊपर अधिक थी. उसमें यह था कि जो कुछ भी लिखा जाये, अपने यथार्थ, अपनी सच्चाई पर लिखा जाये. कम से कम चौंका देने वाली या झटका देने वाली बात. . .वह जनरल ट्रेंड नहीं था.

▣. . .नहीं, लेकिन राजेंद्र यादव ने जो कहानियां लिखीं. . .करीब-करीब सभी कहानियां, चाहे अंत को लेकर ही हों, चौंकानेवाली थीं.

अकेले राजेंद्र यादव की बात रहने दें तो उनके अलावा बहुत से ऐसे लोग थे, जो बहुत सहज रूप से, सहज जीवन की कहानियां लिख रहे थे. पाठक को उन्हें पढ़कर. . .अपने को अनाम भाव थे, वह जो कुछ महसूस करता था, पर कह नहीं पाता था, उनसे उसका संपर्क जुड़ सकता था.

▣ सन् साठ से पैंसठ के बीच करीब-करीब ऐसी ही स्थिति आ गयी थी. . . और ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, रवींद्र कालिया. . .आदि ने जो 'अकहानी' का मूवमेंट 'नई कहानी' को तोड़ने के लिए या 'नई कहानी' से हटने के लिए कोशिश की, एंटीक्लाईमेक्स वाली बातें उठायीं, खुद अपनी कहानियों की वकालत की, फिर भी वह कहानियां ज्यादा चल नहीं पायीं. . .पैंसठ तक आते-आते वह मूवमेंट खत्म हो चुका था. . .वह विधा खत्म हो चुकी थी. . .आपकी नजर में इसका क्या कारण रहा होगा?

मैं इस मामले में बहुत ही पुराने विचारों की हूं. कहानीकार या उपन्यासकार को अपनी वकालत अपने आप नहीं करनी चाहिए. अपने को पीछे रखना चाहिए. इसमें यह हो सकता है कि कुछ जो ख्याति पाने योग्य हैं, वे सामने न आ पायें, क्योंकि आजकल अपना विज्ञापन करने का युग है. मैं समझती हूं, मोहन राकेश की जो कुछ कहानियां थीं या मन्नू भंडारी की जो कहानियां थीं. . .या हमारे समय की और कहानियां . . .स्वयं अपने आप लेखक की वकालत करती थीं. लेखक को वकालत करने की जरूरत नहीं थी. मगर जब ये 'नई कहानी' का आंदोलन शुरू हुआ और कुछ लेखकों ने यह कहा कि हमें मिलकर आक्रमण करना है, अपने को स्थापित और दूसरों को उखाड़ना चाहिए. वहीं उनकी कमजोरी साबित हो गयी.

▣ ये मैं इसलिए मानने को तैयार नहीं हूं कि उस समय की पीढ़ी में भी कुछ लोग ऐसे मान लिये गये थे, जिन्हें वृहत्रयी कहा जाता था, जो 'अहो रूपं अहो ध्वनि' को साबित कर रहे थे. . . . तू मेरी कह, मैं तेरी कहूं. . .मेरा हमदम मेरा दोस्त वाली बात शुरू हुई . . . तो यह तो उन लोगों ने कहा था. . . शुरुआत तो उन्हीं की थी. . .इन्होंने की तो कोई गलती नहीं की. फिर भी ये इतने पॉपुलर क्यों नहीं हो पाये?

अब ये तो आप उनसे पूछिए. मगर ये जो आप 'मेरा हमदम मेरा दोस्त' वाली बात कह रहे हैं, वो लोग कभी मेरे हमदम, मेरे दोस्त नहीं थे. हालांकि वे सभी मेरे परिचित थे. . .और एक तरह का आदर-भाव भी था. . .पर हां, वह एक तरह की गुटबाजी तो थी. . .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

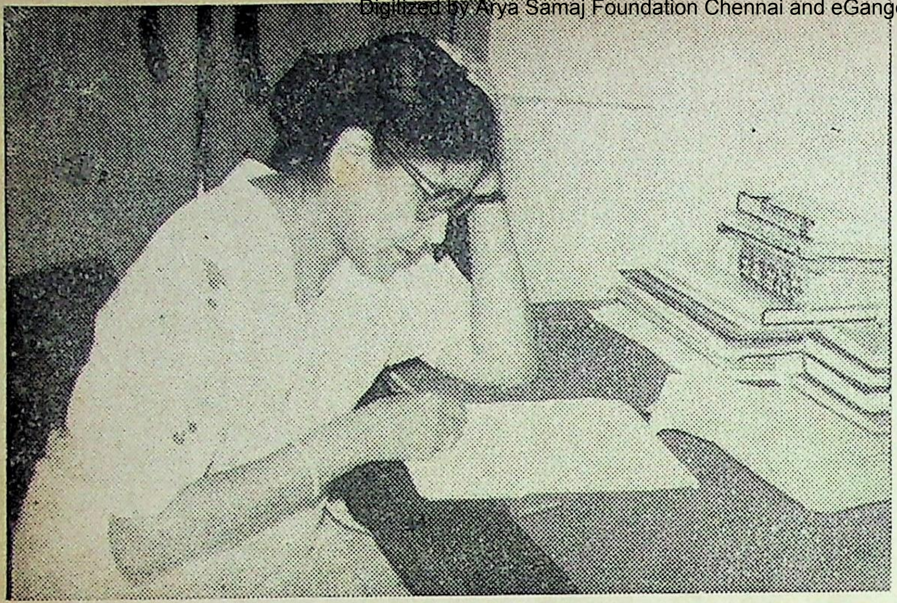

उषा प्रियंवदा : चाहे वह जेनुइन एक्सपीरिएंस हो या एकदम नकली . . .

अपने को आगे करने का और दूसरों को हटाने का प्रयत्न तो था ही. खासतौर से 1965-66 में मैं जब यहां आयी तो मैंने देखा कि यहां तरह-तरह की हवाएं चल रही हैं. . .और तभी मैंने सोच लिया कि मैं इस तरह की गुटबाजी में कभी नहीं पड़ूंगी. . .आपके प्रश्न पर लौटकर आ रही हूं. 'नई कहानी' के परवर्ती लेखकों ने कुछ अच्छी और नयी तरह की कहानी लिखीं, पर मुझे लगता है कि ये लोग अपनी प्रतिभा से स्वयं इतने चमत्कृत हो गये, उसके बाद वे इतने पुलकित हो उठे कि उनकी सृजनात्मकता खत्म हो गयी. हो सकता है कि मैं बिल्कुल गलत कह रही होऊं. मेरा यह विचार एकदम एकांगी भी हो सकता है.

▣ आपके वक्त में, मुझे याद है और आपको भी बहुत अच्छी तरह से याद होगा, बड़े जोर-शोर से एक प्रश्न उठा था 'जेनुइन कहानी' और 'फेक कहानी'. उस समय तो यह बहस बतौर फैशन उठी थी, पर क्या आज भी (इतने वर्ष हो गये उस घटना को) आपको ऐसा लगता है कि इस तरह का वर्गीकरण कहानी के लिए हितकर हो सकता है या तब था?

वर्गीकरण या कहानियों को किसी भी कैटेगिरी में बांधना तो मुझे अच्छा नहीं लगा. उस समय भी नहीं लगता था, मगर मैं यह मानती हूं कि एक जेनुइन अनुभव एक अच्छी आर्टिस्टिक कृति के रूप में सामने रखा जा सकता है. मैं फिर कहूंगी कि मैं कुछ पुराने विचारों की हूं, मैं सोचती हूं कि कहानी को सबसे पहले कहानी होना चाहिए. 'भोगा हुआ यथार्थ' या 'मेरा सार्थक अनुभव' या 'ये मेरे दिल के जख्म हैं. . .' ये गौण बातें हैं. साहित्य के हमेशा साहित्यिक उपादान या मापदंड होते हैं. . .सोल्झे-नित्सिन का भी साहित्य उन्हीं मापदंडों पर तोला जायेगा और प्रेमचंद का भी. शाश्वत मापदंडों पर साहित्य खरा उतरना चाहिए. चाहे वह जेनुइन एक्सपीरिएंस हो या एकदम नकली. जो पीड़ा आपके लिए जेनुइन है. . .वह मुझे लग सकता है कि आप बिल्कुल फेक आंसू बहा रहे हैं. मैं समझती हूं कि अच्छा साहित्य सच बोलता है.

▣ उषाजी, जिस वक्त आपने कहानी-लेखन शुरू किया था, उसके साथ ही एक पूरी पीढ़ी कहानीकारों की सामने आयी थी, जिसमें तमाम महत्वपूर्ण रचनाकार मौजूद थे. जिस तरह से ये रचनाकार और उनकी कहानियां हमारे सामने आयीं, क्या आप ऐसा मानती हैं कि उनमें उस वक्त के आलोचकों का बहुत बड़ा हाथ था यानी उस वक्त का आलोचक आज के आलोचकों से कहीं ज्यादा जिम्मेदार था कहानी को उभारने में?

उस समय जो आलोचक थे, वो आज भी हैं.

▣ लेकिन वे कविता पर उतर आये हैं. मैं कहानी के आलोचकों की बात कर रहा हूं. नामवर सिंह ने नयी कहानी पर. . .आप लोगों पर काफी लिखा. आप पर, अमरकांत, काशीनाथ सिंह, निर्मल वर्मा. . .आदि पर लिखा. मैं दरअसल, जानना यह चाहता हूं कि उसके बाद कहानी का कोई आलोचक क्यों नहीं उभरकर सामने आया?

मेरी समझ में तो इसका कोई जवाब नहीं है.

▣ देखिए, मैं पूछने की कोशिश यह कर रहा था कि आलोचक जिस वक्त कहानी पर लिखता है, उस वक्त वह रचनाकार का कितना सहयोग कर सकता है! मसलन आप लोगों के वक्त की आलोचना से आपके समय के कहानीकार कितने लाभान्वित हुए. . . आपको क्या मिला?

यह तो मैं स्वीकार करूंगी कि नई कहानी आंदोलन में 'वापसी' पर जो सवाल उठाया गया, उससे यह कहानी विशद रूप से पढ़ी गयी और शायद उस कहानी में पाठकों को कुछ मिला भी होगा, क्योंकि अब तक वह मेरी सबसे लोकप्रिय कहानी है. जहां तक औरों का सवाल है, लंबी चर्चा-परिचर्चा से एक मुद्दा उठा, उसे तरह-तरह से डिस्कस किया गया, एक रुचि बनी रही, लोग चर्चित होते रहे. आलोचक,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगर वह सही मायनों में एक आलोचक है, उसमें एक तटस्थ और सूक्ष्म दृष्टि है, 'नीर-क्षीर' वाली प्रबुद्धता है तो वह रचनाकारों को बहुत अर्थों में सहायक सिद्ध हो सकता है. वैसे मैं तो यह मानकर चलती हूं कि सृजनात्मक साहित्यकार को आलोचना से दूर रहना चाहिए, कम से कम आलोचना लिखने से. यदि आप स्वयं लेखक-लेखिका हैं तो अपने कृपापात्रों, अपने मित्रों की प्रशंसा करना बहुत स्वाभाविक हो जाता है. वैसे हिंदी में जिम्मेदार आलोचकों की संख्या कम ही है. अगर कोई ऊपर जा रहा है तो उसे नीचे खींच लाने, मार गिराने की प्रवृत्ति जिम्मेदार हो सकती है, लेकिन मैं समझती हूं कि जो अपने को आलोचक कहते हैं और गैर जिम्मेदाराना ढंग से आलोचना करते हैं, वह अपनी क्रेडिबिलिटी खो देते हैं. कम से कम मैं तो उन्हें गंभीरतापूर्वक नहीं लेती. वैसे जब नामवरजी ने 'वापसी' के बारे में लिखा, वह मुझसे और मैं उनसे नितांत अपरिचित थे. हमारा परिचय तो कई सालों बाद हुआ. उनके लिए मैं उषा प्रियंवदा हूं या कमलकिशोरी या महामाया, शायद यह कतई महत्वपूर्ण नहीं था, उनकी दृष्टि में एक कहानी थी, जिसका नाम था 'वापसी,' अगर नामवरजी एक थे, जिन्होंने 'वापसी' के बारे में कुछ प्रशंसा के शब्द कहे, तो कम से कम आठ-दस 'गंभीर' कहे जाने वाले लेखक-आलोचक भी थे, जिन्होंने इसी परिचर्चा में यह सावित करने की कोशिश की कि 'वापसी' में कुछ नहीं है. यह बात नहीं थी कि अगर किसी ने तारीफ की तो कुछ ने उखाड़ने की कोशिश नहीं की.

▣ मतलब ये है आपका कि आपको रिकगनीशन तो मिला, पर आपसे भी ज्यादा लाभ हुआ नामवरजी या किसी अन्य को यानी लेखक से ज्यादा लाभ आलोचक को मिलता है?

अपनी लेखकीय विनम्रता से तो मैं यही कहूंगी कि 'वापसी' की चर्चा से लाभ मुझे ही हुआ, नामवर सिंह या किसी अन्य को नहीं. (एक ठहाका)

▣ अभी संदर्भ 'वापसी' का आया. लोगों ने जो कहा वो तो छोड़ दीजिए... पर मुझे 'मछलियां' और अन्य (बाद की) कहानियां उससे बेहतर लगती हैं. आपके साथ निर्गुणजी का नाम भी आया. उनकी कहानी और आपकी कहानी को आमने-सामने देखकर पड़ताल की गयी. मैं यह मानूंगा कि यह दो कहानियों की पड़ताल नहीं थी . . .दो आयुवर्ग के लेखकों की पड़ताल नहीं थी, यह दरअसल, आपके समय और आपसे कुछ पहले के समय की संपूर्ण रचनाधर्मिता की पड़ताल थी. आपको क्या लगता है. . .क्या 'वापसी' से बेहतर कहानियां आपने नहीं लिखीं! उनकी चर्चा उतनी क्यों नहीं हुई?

देखिए, मुझे तो अपनी सब कहानियां बहुत अच्छी लगती हैं और एक स्थिति के बाद कोई कहानी अच्छी नहीं लगती. . . .मुझे बिल्कुल अच्छी तरह याद है. . .भारतीजी ने मुझसे कहा कि आपने एक अच्छी-खासी कहानी की रेड़ मार दी है. मैंने उनसे कहा, मुझे तो वह भी कहानी अच्छी लगती है, मगर यह है कि नामवरजी के 'वापसी' पर लिखने से पहले भी मुझसे कुछ ऐसे लोगों ने कहा था (जो कि विवेकशील थे, पर हिंदी के आलोचक नहीं थे) कि यह कहानी बिल्कुल अलग है. . .ये कहानी उन्हें बहुत अच्छी लगी थी. 'नई कहानियां' से उसे सर्वश्रेष्ठ कहानी का पुरस्कार भी मिला था.

▣ मुझे ऐसा लगता रहा है उषाजी, कि आपके संपूर्ण लेखन में कहीं न कहीं एक अंतःसूत्र या अंतर्धारा . . . नजर आती है. और वह है, प्यार के टूटने या चटखने का दर्द. आपकी कहानियां हों या उपन्यास. . .अगर ज्यादा व्यक्तिगत न हो तो क्या आप बताना चाहेंगी कि इसकी वजह क्या है, अनायास ऐसा हुआ है या उसके पीछे कुछ ठोस कारण हैं?

आप निराश होंगे सुनकर, क्योंकि उसके पीछे कोई ठोस कारण नहीं है. ये कहिए कि बड़े होते हुए या बचपन में जिन परिस्थितियों में मेरा पालन-पोषण हुआ. . .कम अवस्था में ही एक सिनिकल 'वर्ल्ड-व्यू' मेरी नजर में आ गया. हम लोग सिर्फ नारी-पुरुष संबंधों की बात नहीं कह रहे हैं. . .एक मोहभंग या हमारे विश्वास टूटने का एक दर्द होता है. इसमें भी उतना ही दर्द होता है, जितना प्यार टूटने पर. जैसे प्रेमी निराश होने पर पहले कुतुब मीनार से कूद जाते थे. . .या रेल से कट जाते थे. मैं समझती हूं कि एक बड़ी उम्र के आदमी की परिवार से की गयी

अपने पति पिअर नूक्रो के साथ :
हम लोग सिर्फ नारी-पुरुष संबंधों की बात नहीं कर रहे हैं !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

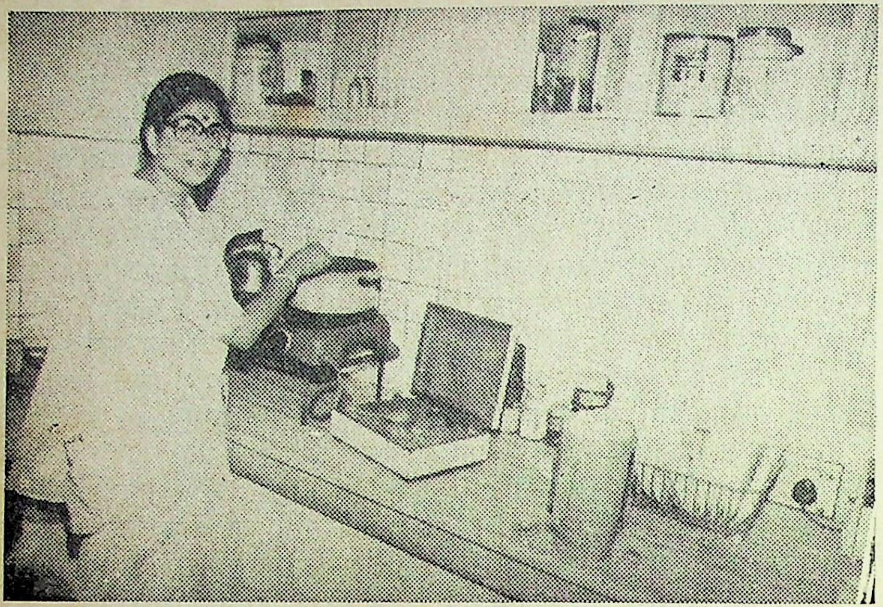

ऊषा जी : मेरे पाक शास्त्र पर भरोसा मत कीजिए!

आशाएं जब भंग होती हैं. . .तो वह विडंबना बहुत कड़ी है, बनिस्पत उस लड़के के जो अपनी प्रेमिका से कहता है कि अगर तुमसे शादी नहीं हुई तो मैं कूदकर मर जाऊंगा. जैसे गजाधर बाबू की जो विडंबना है, उससे वे नहीं उबर पाते. शायद मैंने अपने आसपास मध्यवर्गीय परिवार में, एक बहुत बड़े परिवार में बहुत-सी ऐसी बातें देखीं, जो उस वक्त समझ में नहीं आती थीं . . बहुत बाद में समझ में आयीं. . .ये देखा कि विश्वास और प्यार बहुत ही नाजुक होता है. . .और जरा से आघात से यह टूट जाता है. वह अंतर्धारा है. . .आप मान सकते हैं. मैं मानती हूं. इसीलिए शायद मुझ पर यह दोषारोपण है कि वही चीज बार-बार उभर आती है.

▣ आपने पिछले दिनों कहा था कि जिस वक्त आप लेखन कर रही थीं. . . उस वक्त देह को लेकर आप लोग इतने कांशस नहीं थे. . .और जब कि अब औरत अपनी देह को लेकर कांशस हुई है. उसने अपने 'स्व' को. . . अपनी मर्जी को महत्व दिया है. . . पर आज जो बोल्ड-लेखन के नाम पर महिलाओं पर आरोप लगाया जाता है...

मैं यह मानती हूं कि अगर वह लेखन में सहज ढंग से आया है. . .अगर लेखिका यह सोचकर नहीं लिख रही है कि वह बताना चाहती है कि उसमें भी यह सजगता है. . .तो उसको मैं संकीर्ण नहीं समझती. यह अपनी-अपनी प्रवृत्ति है. मेरे सभी उपन्यासों में आप पायेंगे कि शारीरिक आत्मीयता की ओर संकेत है. . .ये बात नहीं कि मैं लिख नहीं सकती. . .यह अपना-अपना विकल्प है . . . 'रुकोगी नहीं राधिका' में भी एक क्षण ऐसी स्थिति है, जबकि अभय और राधिका में एक रात को आत्मीयता स्थापित हो जाती है. . .मैं भी विस्तार दे सकती थी, पर मैंने इसे बिलकुल आभास देकर छोड़ दिया है, क्योंकि उस स्थल पर विस्तार उपन्यास में कलात्मक दोष बन जाता. आप 'शेष यात्रा' पढ़ें तो उसमें भी यही पायेंगे कि मैंने बहुत कुछ पाठक की कल्पना पर छोड़ दिया है. अगर लेखिका सहज है और वह चौंकाने के लिए ही नहीं लिख रही है तो वह ठीक है. पाठक-वर्ग बहुत चालाक होता है, उसे यह पता चल जाता है कि आप बार-बार वही लटका क्यों इस्तेमाल कर रहे हैं? समाज में हर जगह डबल स्टेंडर्ड है. पुरुष लिखता है तो उसे इग्नोर कर दिया जाता है और महिला लिखती है तो उसे चटखारे ले-लेकर पढ़ा जाता है. कुछ पुरुषों ने भी सेक्स का वर्णन बड़े दायित्वपूर्ण तरीके से किया है. जैसे मैं 'नदी के द्वीप' का उल्लेख करूंगी. . .जिसमें भुवन और रेखा के संबंध का बहुत संवेदनशील और कलात्मक रूप से वर्णन किया गया है. . . लेकिन 'मैं स्त्री हूं और मेरी देह है. . . इस देह के बारे में लिखूंगी. . .' सिर्फ इसलिए उसे बार-बार लिखा जाये तो यह तो मैं मानती हूं कि वह सस्तापन है. लेखक या लेखिका के विवेक पर निर्भर करता है कि आप किस सीमा तक जाना चाहते हैं. अगर आप उसे निभा सकते हैं और अगर वह कलात्मक परिधि के अंदर है तो उसमें मुझे कोई एतराज नहीं है.

▣ एक चीज बताइए. . .कि एक लेखक की सामाजिक वैल्यू और अपनी निजी वैल्यू जो उसके संघर्ष से पैदा होती है. . . क्या वह अपनी निजी वैल्यू को साहित्य में लागू न करके महज निजी जिंदगी में. . .लागू करता है? एक निर्णय की स्थिति तक पहुंचते-पहुंचते सामाजिक वैल्यूज आड़े आती हैं और अनिर्णय की स्थिति में ही अपने आपको रखकर नायिका खामोश हो जाती है. . .आपकी नायिकाएं भी अक्सर अनिर्णय की स्थिति में रहती हैं. . .क्यों?

शायद वह लेखिका का अनिर्णय है. इसलिए मैं आपसे बहुत सच बात कहती हूं. तरह-तरह की परिस्थितियों में (हम चाहे किसी भी उम्र पर क्यों न हों) हमें विकसित होते रहना चाहिए. जैसे-जैसे हमें समझ आती है. . .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम दुनिया देखते हैं. . .उसके हिसाब से एडजस्ट होना या उस हिसाब से हमारे पास विकल्प होना चाहिए. जब अपने में इतनी समझ आ जाती है तो उसे परिपक्वता कहते हैं. 'पचपन खंभे लाल दीवारें' लिखने के दस साल बाद जब मैंने यह पढ़ा तो मुझे लगा कि यह मैंने क्या किया! जिस समय मैंने वह उपन्यास लिखा था, उस समय मुझे वह अंत बहुत ही स्वाभाविक लगा था, क्योंकि जिस प्रकार की वह लड़की थी, उसके लिए सब कुछ तोड़-ताड़कर चला जाना बहुत मुश्किल था. . .ऐसी होती तो वह बहुत पहले ही तोड़-ताड़कर जा चुकी होती. दस साल बाद मुझे लगा कि हो सकता है वह सुखी न होती, पर मुझे यह विकल्प देना चाहिए था.

▣ जब आप हिंदुस्तान में थीं. . .उस वक्त औरत की जो हालत थी. . .एक खुलती हुई औरत . . .जो पूरी तरह खुल नहीं पायी थी, उस वक्त आपकी और मन्नू भंडारी की नायिकाओं को देखकर लगा था कि कहीं उन्होंने अपने 'स्व' को महत्व देना शुरू किया है. क्या आज आपको ऐसा लगता है कि हिंदुस्तान की औरत उस संक्रमण की स्थिति से बाहर आकर कहीं पहुंच सकी है. . .!

बहुत ज्यादा दूर नहीं पहुंची है.

▣ इसके पीछे संस्कार जिम्मेदार हैं या परिस्थितियां?

थोड़े से संस्कार भी कहिए और थोड़ा-सा भारतीय पुरुष-समाज, और उसके द्वारा निर्धारित दोहरे माप-दंड. अपने प्रति स्त्री बहुत सजग हो गयी है, अधिकारों के प्रति सजग हो गयी है. अगर वह कोई निर्णय लेना चाहती है. . . जैसी चित्रा मुद्गल की 'दौड़' की नायिका है. . .तो निर्णय वह ले लेती है. अब उसके सामने यह विकल्प नहीं रहा कि विवाहित रहे या और जो भी आये उसे भुगते. स्त्री के सामने यह विकल्प आ गया है कि वह अलग रह सकती है.

□ महिला-लेखन को लेकर इधर खासी चर्चा रही है. क्या महिला लेखन जैसी कोई चीज सचमुच अपना वजूद बना रही है. . .या 'लेखन' सिर्फ 'लेखन' है. . .महिला का हो या पुरुष का, इससे फर्क क्या पड़ता है?

इस प्रश्न के दो पहलू हैं. नामवरजी ने कहा था कि बहुत से लोग इसीलिए प्रकाशित हो रहे हैं, क्योंकि वह महिलाएं हैं. . .तब मैंने कहा था कि अच्छे लेखन . . .सार्थक लेखन में हमें यह फर्क नहीं करना चाहिए कि वह स्त्री ने लिखा है या पुरुष ने लिखा है. दूसरा पहलू यह है कि जिस तरह से एक बहुत रूखा और पौरुषेय लेखन हो सकता है, उसी तरह का स्त्री का अपना संसार उतना ही वैलिड है, जितना पुरुष का बाहर का संसार, जितना 'सोना माटी' (विवेकी राय) का. . .यानी गांव का संसार वैलिड है, उतना ही साड़ी, कड़छुल और नारी का संसार भी वैलिड है. वैसे स्त्रियों को हीनभाव से देखे जाने के लिए स्त्रियां भी जिम्मेदार हैं. हम कढ़ाई-कड़छुल में इस कदर उलझे हुए हैं कि. . .

▣ नारी-संसार के तहत जिन चीजों का आप जिक्र कर रही हैं, वे निजी जिंदगी से जितनी ज्यादा जुड़ी हैं, उतनी सामाजिक जिंदगी से नहीं. लेखन में अक्सर दो तरह की चीजें देखने को मिली हैं—एक तो सामाजिक सरोकार से युक्त लेखन है और दूसरा निजी अनुभूतियों की पर्सनल किस्म की अभिव्यक्ति. . .आप निजी जीवन की अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देना ज्यादा महत्वपूर्ण मानती हैं या सामाजिक सरोकारों के लेखन को?

क्या अच्छा है, क्या बुरा, यह नहीं तोला जा सकता. . .यह तो लेखक की दृष्टि पर निर्भर करता है. आप मेरी कहानियों पर भी यह आरोप लगा सकते हैं कि हिंदुस्तान में क्या हो रहा है, यह पता ही नहीं लगेगा. अमरीका में क्या होनेवाला है. . .वहां बेकारी, कुंठा, विद्रोह. . .कुछ पता नहीं लगेगा. क्योंकि उनका जो संसार है, वह निजी, अपना और अंतरी संसार है. इसका मतलब यह नहीं है कि एक लेखक की तरह मेरे पास वह सामाजिक दृष्टि नहीं है. मैं यह मानती हूं कि सामाजिक दृष्टि लेखक की आर्टिस्टिक रिद्म में व्याघात करती है.

▣ आपके कहने का मतलब यह है लेखन को सामाजिक सरोकार से ज जाये तो उसकी आर्टिस्टिक रि में व्याघात पहुंचता है?

मैं अपनी बात कह रही हूं. मुझे ये ल है.

▣ आपने विदेशी पृष्ठभूमि में भी कहानियां लिखीं. . . 'मछलियां' अ . . . वहां देशी औरत की ही उल उसके संक्रमण और मन को चि किया है. . . . विदेशी औरत की स्थिति है हमारे यहां के मुका कभी उस चीज पर आपने कलम उठायी?

नहीं, इस पर तो कभी कलम नहीं उठ . . .क्योंकि मुझे लगता है कि की लेखिकाएं ही स्वयं इतना रही हैं. . .हालांकि मैं उनकी जि से बहुत घुली-मिली हूं, मगर लगता है कि वहां जो उखड़े हुए हैं. . .जो भारतीय यहां से वहां अ पित कर दिये गये हैं. . .उसको मन ज्यादा बांधता है. . . मेरी द उसको ज्यादा पकड़ती है.

▣ पश्चिम से जो हम नारी मु आंदोलन की बात ला रहे हैं. . . आप किस दृष्टि-बंध में लेती हैं?

अमरीका में नारी मुक्ति की इसलिए चलती है कि वहां औरतों उतने अधिकार नहीं मिले, जि पुरुष को मिले हैं. . . वहां समान के लिए समान वेतन की बात चल है, जो भारत में पहले ही है. मुझे जब नियुक्त किया तो एक पुरु कम वेतन मिला. एक साल बाद जब विभागाध्यक्ष से शिकायत की उन्होंने कहा, आप तो स्त्री हैं. . . अ तो पति भी कमाते हैं. . . मैं फिर की कहानी (दौड़) पर आऊंगी स्त्री चाहे वह सुषमा हो, रा हो या अंकिता हो. . . यहां काम हो या न हो. . . उसे सेक्स सं स्वतंत्रता इतनी नहीं है, जि पश्चिम में.

▣ भारत में जब आप रह रही तब आपको लेखन के अनुकूल मा मिलता था या विदेश जाने के भी आपको यह अनुकलता मि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी चित्रों के छायाकार : पवन मेहरा

मैं तो सिर्फ ऊषा हूं, प्रियंवदा तो मेरी मां हैं !

रही है?

मैं यह कहूंगी कि मुझे अक्सर ऐसा लगता है कि जाने के बाद मुझे साल दो साल के बाद भारत लौट आना चाहिए था. उस समय जब मैंने वह निर्णय लिया था कि मैं अमरीका में रहूं और वहां पढ़ाऊं... तब मैंने अपना स्वरूप इतना नहीं पहचाना था. साहित्यकार मेरे अंदर इतना प्रबल है कि बीस साल तक खाने के बाद भी नहीं मर पायेगा. वहां का माहौल मेरे साहित्यकार को इतना सक्रिय नहीं कर पाया.

▣ देश में रह रहे या विदेशों में बसे भारतीय लेखक के सामने आने वाले सामाजिक, आर्थिक दबाव, लेखकीय बदलाव. . . समस्याएं और आत्मतुष्टि के कारण आदि कितने कॉमन हैं और कितने अलग?

सबसे बड़ी बात तो यह है कि वहां अच्छे से अच्छे लेखक का प्रकाशित होना बड़ा मुश्किल है. जब तक आपने भूकंप लाने वाली किताब नहीं लिखी है, तब तक आप प्रकाशित नहीं हो सकते या फिर आप ऐसी चलताऊ किताब लिखिए, जिसे पेपर बैंक वाले छाप लें. युवा लेखक को बरसों हो जाते हैं, लिखते हुए छपने की प्रतीक्षा में.

▣ आपको वहां के युवालेखन में ज्यादा फ्रस्टेशन नजर आती है या हिंदी के लेखन (भारतीय) में?

मुझे वहां ज्यादा फ्रस्टेशन नजर आती है. प्रकाशन तो मुख्य कारण है ही, फिर वहां का लेखक हर मायने में सक्रिय है, विश्व संबंधी सभी समस्याओं को गंभीरता से लेता है. बुद्धिजीवी होने का दायित्व पहचानता है, हर भाषा के लेखक को अपना परिवार मानकर चलता है. आजकल जो विश्व स्तर पर बहुत गंभीर समस्याएं हैं, जिनसे हताश होना स्वाभाविक है.

▣ हमारे यहां बुद्धिजीवियों का मानना है कि बैस्ट सेलर साहित्यिक नहीं हो सकता या साहित्यिक लेखन बैस्ट सेलर नहीं हो सकता. . . क्या वहां भी यही स्थिति है?

नहीं, कुछ लोग तो बहुत दुरूह और साहित्यिक होने के बावजूद बैस्ट सेलर हो जाते हैं. सोल्झेनित्सिन की ही एक किताब दुरूह थी पढ़ने में, लेकिन वह बैस्ट सेलर लिस्ट में रही. सॉल बेलो अपने लेखन के बल पर ही बैस्ट सेलर लिस्ट पर रहे. आज जो उपन्यास आपको वहां बैस्ट सेलर लिस्ट में मिलेगा. . . वही दो साल बाद किसी को याद नहीं रहेगा कि बैस्ट सेलर था.

▣ भारतीय लेखन को वहां किस दृष्टि से देखा जाता है? हिंदी लेखन को. . . हिंदी पढ़ाने के कारण आपको ज्यादा इस बात का अनुभव होगा कि वहां लोगों की नजर पुराने (हिंदी) लेखन पर ही रहती है या समकालीन लेखन पर भी नजर रखी जाती है?

मेरी एक छात्रा जो वहां शोध कर रही है, उसका विषय ही यही है कि अज्ञेय, जैनेंद्र और यशपाल की कहानियों में जो एक स्टीरियो टाइप था. . . वह आज की कहानी लेखिकाओं में मिलता है कि नहीं. आम लोग जो हैं. . . वे आर. के. नारायण, अनिता देसाई जैसे लेखकों की पुस्तकों को ही भारतीय लेखन समझते हैं. अन्य भाषाओं में जो लिखा जा रहा है, उसे नहीं. वहां यह भाव तो है ही कि अगर आप अंग्रेजी में नहीं लिख रहे हैं तो इसका मतलब है आपको अंग्रेजी नहीं आती और आप अच्छा नहीं लिख सकते.

▣ अमरीका के नये लेखकों और भारत के नये लेखकों के ट्रेंड्स में आपको क्या फर्क लगता है? चेतना एक-सी लगती है या फर्क है?

एक जैसी तो नहीं हो सकती भौगोलिक परिस्थितियों की वजह से. हां, जहां तक विश्व चेतना का सवाल है. . . सभी जगह थोड़ा बहुत युवावर्ग में आक्रोश, विरोध, तोड़फोड़. . . अपने को जमाना. . . ये तो है ही. यह तो ब्रिटेन में भी मिलेगा, भारत में भी और अमरीका में भी. वहां युवावर्ग का आक्रोश भरे पेट का है तो यहां का आधे पेट का या रीते पेट का. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीमांत

अपने गांव के प्रधान से आक्रांत गणेशी उस सुदूर अंचल में आया था केवल अपने आप को सुरक्षित महसूसने...और उस अंचल के निवासियों, वहां की पुलिस ने अनथक प्रयास करके उसके जीवन को जो रूप दिया, क्या उस रूप की अपेक्षा आप भी अपने समाज या तंत्र से करना चाहेंगे...?

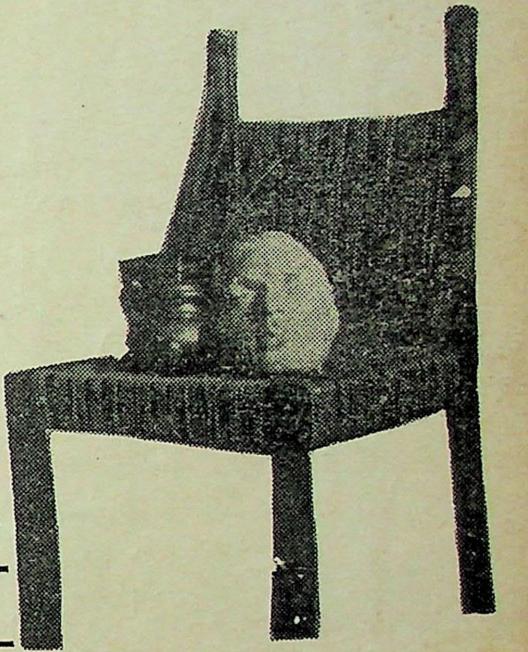

क्षितिज शर्मा

रात काफी गहरा गयी थी. इस बेमौसम की बारिश ने उसे एकदम काला कर दिया था. आसमान पर ढूंढ़ने पर भी तारे नहीं मिल सकते थे. अनुमान ही नहीं लग रहा था कि बादल कितने गहरे हैं. बस, यही लगता था—बारिश अब थमेगी नहीं.

नारायणपुर और जमुनागढ़ के जंगलों की भयावहता बढ़ती जा रही थी. बारिश की मोटी बूंदों से पेड़ों पर पड़नेवाली चोटों की आवाज डरावनी लगने लगी थी.

उनकी जीप सड़क पर पड़े पानी को चीरती हुई दौड़ रही थी. सर्दी पराकाष्ठा पर थी. ड्राइवर गर्म वर्दी के ऊपर कंबल लपेटे हुए था और दोनों कांस्टेबल ओवर कोट के कालरों को बार-बार खींचकर कान ढक रहे थे. वह जीप की सीटों के मध्य यानी दोनों कांस्टेबलों के पैरों के बीच की जगह में गर्दन को भिची हुई टांगों के अंदर दुबकाकर पड़ा हुआ था. बार-बार टांगों और गर्दन को उनकी सीमा से अधिक मोड़ने की कोशिश में वह कांस्टेबल के पैरों की तरफ खिसक आता था. उसकी इस हरकत से दोनों कांस्टेबलों को बार-बार पैर इधर-उधर करने पड़ते थे. इस प्रक्रिया में कभी-कभी कानों तक खींचे गये ओवर कोट के कालर छूट जाते थे. तब उनका गुस्सा असहनीय हो जाता था. वे अपने डंडे उसकी मुड़ी हुई टांगों के बीच घुसेड़कर पांच-सात गालियां दे देते थे. इस पर भी अगर उसकी हरकत बंद न होती तो वे उसकी जांघों या कूल्हों पर जूतों की जोरदार थाप दे देते थे कि वह कायदे से रहे.

उसका नाम गणेशी है. गणेशी पागल. इसी नाम से लोग उसे पुकारते आये हैं. पागल होने से पहले उसका नाम गणेशी ही था या कुछ और, कोई नहीं जानता. ना ही किसी ने उससे पूछने की आवश्यकता ही महसूस की कि उसका सही नाम और मुकाम क्या है. बस, एक बार हल्ला हो गया—'पागल है वह'. तभी से वह गणेशी है, बल्कि गणेशी पागल है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके जीवन का इतिहास बहुत ही संक्षिप्त है. उसका
य दाऊदपुर गांव में हुआ था. दाऊदपुर के जाटव मुहल्ले
किसी बुढ़िया ने पहले-पहल उसे देखा था. वह जिस तरह
ाली—गली घूम रहा था और हर घर-आंगन में झांक-झांक
: देख रहा था, किसी को भी उस पर संदेह हो सकता था.
टव मोहल्ले की बुढ़िया का शक जब विश्वास में बदलने
ा कि हो न हो, चोर-ठग ही हो, बच्चों को पकड़नेवाला
ाईगीर भी हो सकता है, तो उसने पांच-सात और सयानों
इकट्ठा कर उसकी किलाबंदी करवा दी.

चारों ओर से प्रश्नों की बौछार होने तक वह दोनों हाथों को
ती पर पालथी मारकर पूरी तरह अकड़ गया था.
ौन हो तुम? कौन गांव के हो? कौन बिरादरी के हो...
ां क्या करने आये हो?... चोर-उच्चका हो क्या?
ी-गली क्यों घूम रहे हो?" ढेर सारे प्रश्नों को वह सुनता
ा और सबके चेहरों को ताकता रहा.

"बोलो, बोलते क्यों नहीं?"

"सुनो, हम यहां के राजा हैं. ये सारे गांव हमारे हैं, हमारे.
म राजा हैं. वो सुसरा हमारे गांव का प्रधान हमको बेदखल
रता है! राजा को बेदखल!" वह जोर का ठहाका मारकर
सा. फिर जोश में उत्तेजित हो गया, "जिस-जिस के पास
ामीन नहीं है, वह हमारी जमीन ले ले, पर उस साले प्रधान
ो हम देखेंगे. हमसे ऐंठता है, राजा से!"

"अरे पगला है, छोड़ो!"

एक स्वर में निर्णय हो गया. उसे घेराबंदी से मुक्त कर सब बिखर गये. पगले के मुंह कौन लगे! जाने कब क्या बक दे!

इससे पूर्व उसके जीवन का इतिहास किसी को प्राप्त नहीं है. उसी किलाबंदी के बीच रामकिशन की मां ने अवश्य कहा था कि वह उसकी फूफी का लड़का-सा लगता है, पर तत्काल ही संशोधन भी कर दिया था कि वैसा कुछ लगता जरूर है, पर यह वह नहीं है.

दाऊदपुर के लोग आज भी कहते हैं कि शुरू में वह बेचारा बहुत अच्छा था. किसी को कुछ नहीं कहता था. अपने रास्ते आता था, अपने रास्ते जाता था. जो कुछ प्यार से दे दिया, खा लेता था. लोग भी खुलकर उससे हंसी-मजाक कर लेते थे.

धीरे-धीरे वह ज्यादा पगलाने लगा था और उसकी उद्दंडता बढ़ गयी थी. वह खेत उखाड़ने लगा था. किसी को भी मारने दौड़ने लगा था.

आखिर एक दिन सोचना पड़ा कि कुछ करना चाहिए. निर्णय भी ले लिया गया और उसे पुलिस चौकी के हवाले कर दिया गया. गांव में कुछ शांति महसूस हुई.

चौकी में भी वह उसी तरह अकड़कर खड़ा रहा. लंबी मूंछवाले हवलदार ने तेवर चढ़ाकर उसकी ओर देखा. वह जरा और अकड़ गया. हवलदार ने उसके पैरों के पास डंडे से जमीन पर ठक्-ठक् मार कर उसे चेताना चाहा. उसने हवलदार को भारी भरकम गाली दे डाली.

उसकी अकल दुरुस्त करने का काम यहीं से आरंभ हो गया. पूरे नौ दिन और नौ रातें उसे पुलिस चौकी की तंग कोठरी में बांधे रखा गया. लात, बेंत, घूसे, थप्पड़ और नालदार जूतों की थाप तब तक पड़ती रही, जब तक वह एक कड़कती आवाज पर हवलदार के सामने कंपकपा कर मूत नहीं देता था.

दसवें दिन सवेरे उसके पीछे से एक लात मारकर उसे चौकी के बाहर धकेल दिया.

कुछ देर वह पुलिस चौकी के बाहर धूप में अपनी देह को सेकता रहा. सूजे हुए अंगों को सहलाता रहा. बिखरे बालों और फटे कपड़ों के बाहर झंकते हुए अपने अंगों पर मिट्टी मलता रहा. फिर न जाने उसकी दुरुस्त हुई अकल ने क्या झटका खाया कि वह फिर अकड़कर खड़ा हो गया. राजा का पूरा दंभ उसके अंदर न भी रहा हो, पर वह किसी छोटे-मोटे जागीदार से कम नहीं था.

अपने दुखते पैरों को रगड़ता हुआ और हाथों को हवा में फैलाकर अंगुलियों से गोल-गोल ब्रह्मांड बनाता हुआ वहां से चल पड़ा.

वह चलता जाता था और बड़बड़ाता जाता था. कभी क्रोधित होता था और कभी मुस्कान के साथ सिर और हाथों को एक साथ हिलाकर मुक्ति पा ली है, जैसी मुद्रा में मस्त हो जाता था. जब कभी दुखते अंग सहयोग देने से इंकार कर देते तो वह खेत में मेड़ का सहारा लेकर पसर जाता था.

उस दिन पता नहीं उसने क्या सोचा, दाऊदपुर जाने की बजाय हाकिमपुर का रास्ता पकड़ लिया. रात ढलने से पहले ही रेंगता हुआ हाकिमपुर पहुंच गया और वहीं अपने साम्राज्य की स्थापना कर दी.

सवेरा होते-होते सारे गांव में हल्ला हो गया—'दाऊदपुर का गणेशी पागल यहां आ गया है.' मां-बाप ने बच्चों को बाहर निकलने से मना कर दिया. जिस गली से वह गुजरता, लोग आगे को खदेड़ देते. जिस आंगन की ओर मुड़ता, वहीं से लट्ठी की ठक् के साथ दुत्कार दिया जाता.

उसने भी हार नहीं मानने का निश्चय कर लिया था. जिसे देखता; डटकर पत्थर का वार कर देता. सबसे भयंकर बात यह हुई कि उसने भूदेव की गइया खोल दी. पत्थरों से मार-मारकर जगंल की ओर भगा दिया.

आग में घी पड़ गया. आज भूदेव की गइया भगा दी. अच्छा हुआ, देख लिया. कल को, कुछ और नुकशान कर देगा. यहां क्या इस पागल की निगरानी करते रहेंगे! बात भी सच थी—एक पागल पूरे गांव को परेशान कर रहा है. न रात का चैन, न दिन का आराम. उसी दिन दस-बीस लोग लाठियों से हांकते हुए उसे गांव से बाहर कर आये.

तब से गणेशी ने आसपास के सभी गांवों को अपने कब्जे में ले लिया. जहां मर्जी आयेगी जायेगा, जो दांव लगेगा, उठायेगा और खायेगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी गांवों के लोग परेशान. बच्चों का बाहर निकलना मुश्किल. बहू-बेटियों के आने-जाने में खतरा. पागल ही ठहरा. कुछ भी कर दे. सोचा गया, क्या किया जाये. इन्हीं निर्णायक क्षणों में एक दिन उसे घेरकर खूब पीट-पाटकर एक किनारे फेंक दिया.

उसे अचानक क्या सूझा कि उछलता-कूदता बच्चों की ओर जा लपका और भागते हुए बच्चों में से एक को पकड़कर छाती से चिपका लिया. उसके रोने, चिल्लाने और छटपटाने की परवाह किये बिना उसे बेरहमी से चूमने लगा.

बस, सारे गांव में हल्ला हो गया—'पागल छुट्टन के लड़के को उठा ले गया है. . . पता नहीं किस गली-मोहल्ले को भाग गया है. . . .अरे, पकड़ो साले को, कहीं छुट्टन के लौंडे को मार ही न दे.'

और वह भीड़ से घिर ही नहीं गया था बल्कि लात, घूंसे और थप्पड़ों की कई चोटें भी खा चुका था. उसे पता नहीं कब उसके हाथ से बच्चा छूटा, कब भीड़ छटी. वह तो बस एक ही धुन लगाये बैठा था, "मेरा बच्चा, मेरा बिटुवा."

उस दिन से उसने एक नयी रट पकड़ ली थी, मेरे बिटुवा की. छपरौली, मदनगढ़ और आस-पास के गांवों में अब वह मर्जी आये जिधर घूम लेता था. राजा या जागीरदार होने की बात अब वह भूल गया था. दूर से बच्चों को ताकता हुआ 'मेरा बिटुवा' जरूर कह देता था. जहां दो-चार आदमी इकट्ठे देखता, डर भी जाता था. लोगों को अपनी ओर आता देखकर भाग खड़ा होता था.

लोगों ने और नुकसान करते तो उसे नहीं देखा, पर उनके दिमाग में वह उठाईगीर के रूप में जम गया था. लकड़बग्घे से भी ज्यादा भय उसका बन गया था कि सारे इलाके में एक पागल घूमता है, बच्चों को पकड़कर मार देता है. कई लोगों ने उसे बच्चों को ताकते हुए देखा है. वह अपना दांव खोजता रहता है. घर-घर यही भय रहता था, पता नहीं कब किधर को निकल आये. हर वक्त कोई घर थोड़े ही रहता है. बच्चों का क्या है, किधर को भी निकल सकते हैं.

आखिर अपनी सुरक्षा के लिए उसे पकड़ पुलिस के हवाले कर दिया गया. वहां उसे होश में लाने का काम फिर आरंभ हो गया. मोटे से दारोगा ने सुरती को निचले होंठ और दांतों के बीच दबाकर मजाकिया ढंग से पूछा, "कहो, क्या चाहिए?" उसने लपकते हुए जवाब दे दिया, "मेरा बिटुवा."

"तेरा बिटुवा!" दारोगा ने पूरी ताकत से एक थप्पड़ खींच दिया. वह ईंटोंवाले फर्श पर गिर गया. दारोगा ने अपना पैर उसके पेट पर टिका दिया और सुरती का थूक पच से उसके चेहरे पर बिखेर दिया.

होश में आने के इस इलाज में उसे काफी देर बेहोश रहना पड़ा. यह क्रम दिन में कई-कई बार होने लगा. अंधेरे बंद कमरे में पड़े-पड़े वह बड़बड़ाता रहता था. पुलिसवालों के आने पर चुप हो जाता था. सहमा हुआ उनको ताकता रहता था कि कब इलाज आरंभ करेंगे और कब वह बचाव में हाथ-पैरों को ऊपर की ओर खड़ा कर देगा.

काफी देर ऐसे ही चलता रहा. शाम होने पर एक सिपाही अंदर आया. उसे खोलकर हांकते हुए साथ वाले कमरे में बैठा आया और चेतावनी दे आया, "अगर हिला तो पूरा डंडा अंदर कर दूंगा."

वहां चुपचाप पड़ा वह कोई हरकत नहीं कर रहा था. बस, एकटक उस कमरे की तरफ ताकता जा रहा था, जहां पुलिसवाले बैठे थे. वह उनको अंदर-बाहर जाता देखता रहा. कभी-कभी बेंच को आगे-पीछे खिसका जरूर देता था. साथ ही, "क्या है बे?" की कड़कती आवाज पर सहम जाता.

अंधेरा होने तक वह खिसकता-खिसकता दरवाजे के पास आ गया और एक आंख से पुलिसवालों को देखता रहा.

पता नहीं कब उसका दाव लगा, कहां से उसमें ताकत आयी, वह लपका और थाने की चार-दीवारी से बाहर भाग निकला.

बहुत दूर भागने के बाद अचानक उसे ठोकर लगी. धडाम से वह किसी चीज के अंदर काफी गहराई में गिर गया.

बाहर काफी शोर हो गया था. लगता था भीड़ जमा हो गयी थी. लोगों में सरगर्मी बढ़ गयी थी. वे चिंतित भी जान पड़ते थे. एक साथ कई लोग बोल रहे थे, "इस सूखे कुएं में एक आदमी गिर गया है. राहगीर होगा कोई. रास्ता भटक गया होगा. . . . अंधेरे में ना दिखा हो. जाने कब से पड़ा है इसमें, ये तो झुम्मन गड़रिया ने सुन ली इसकी आवाज. . . .हां भई, जिंदा तो है.

ग़ज़ल

शबनम गोरखपुरी

आंसू मेरी पलकों से हटा क्यों नहीं देते
इन जलते चरागों को बुझा क्यों नहीं देते.

दुनियां की निगाहों से छिपा क्यों नहीं देते
मैं हर्फे गलत हूं तो मिटा क्यों नहीं देते.

मैं हूं कि नहीं हूं ये बता क्यों नहीं देते
मुझको मेरा आईना दिखा क्यों नहीं देते.

माहौल की जंजीरों में जकड़े हुए लमहे
सोये हुए माजी को जगा क्यों नहीं देते.

बढ़ते ही चले जाते हैं मंजिल के अंधेरे
एक शम्मा सरेराह जला क्यों नहीं देते.

हर एक मेरे जीने की दुआ मांग रहा है
मरने की मुझे लोग दुआ क्यों नहीं देते.

वह रस्म जो मांगों में भरे खून के सिंदूर
उस रस्मको हम लोग मिटा क्यों नहीं देते.

फूलों पे बरसते हैं जो आंसू उन्हें 'शबनम'
तुम वक्त की पलकों पे सजा क्यों नहीं देते.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरे, जिंदा न होता तो रोना कैसे. . .चोट तो काफी आयी होगी. चलो, बच तो गया. . .भगवान बचाते हैं सबको."

तब तक एक जवान लड़का भागता हुआ रस्सी ले आया. फटाफट रस्सी को कुएं में डाला गया. ऊपर से आवाज लगाई गयी कि रस्से को पकड़ लो भाई. पर अंदर से कोई उत्तर नहीं आया. केवल रोने और कराहने की आवाज आती रही.

बाहर से लोग-बार-बार कोशिश करते रहे कि आवाज उस तक पहुंचे. वह रस्सी को पकड़ ले और वे रस्सी खींचकर उसे बाहर निकाल लें, पर उनकी सारी कोशिशें बेकार गयीं.

लोग काफी उत्तेजित थे. फटाफट दो आदमी रस्सी के सहारे कुएं में घुस गये. हो सकता है, बेचारे को काफी चोट आयी हो. कान ही फूट गये हों. कुछ भी हो सकता है. परदेशी होगा. मदद जरूर की जानी चाहिए.

खैर, किसी तरह उसे बाहर निकाला गया. वह मादर-जात नंगा था. हाथ, पैर और बदन में कई लंबी-लंबी खरोंचें थीं. दो-एक पुराने घाव थे, जो लहुलूहान हो रहे थे. कमर की हड्डी टूटकर ऊपर को उभर आयी थी. सारा शरीर मैला और गंदा था. बालों में ढेर मिट्टी थी. मल-मूत्र की सूखी पपड़ियों से उसका निचला हिस्सा बदबू मार रहा था. चेहरा सूजा हुआ था. आंखें लाल और अंदर को धंसी हुई थीं. वह न किसी की तरफ देख रहा था, न बोल रहा था.

तब से वह नारायणपुर का हो गया. अब उसका न कोई साम्राज्य था, न जागीरदारी और न ही 'बिटुवा' को पाने की लालसा. न अब उसमें जोश था, न किसी को मार-भगाने की सामर्थ्य. कूल्हों को रगड़ता-रगड़ता या पंजों और हथेलियों के सहारे इस गली से उस गली दिन भर में एक चक्कर लगा लेता था. जब थक जाता था तो किसी घर के आगे नालियों के पास लेट जाता था.

लोगों को भी उससे विशेष शिकायत नहीं थी, बल्कि उस पर दया आती थी. जिसके घर जो बचता, उसे दे देते थे. जब पेट भर जाता था तो वह रगड़ता-रगड़ता बाहर खुले में चला आता था. वहीं पड़ा-पड़ा कभी आसमान में अंगुलियां घुमा देता, कभी मिट्टी पर टेढ़ी-मेढ़ी रेखायें खींच देता और कभी घावों पर की पपड़ी को उखाड़कर खून बहा देता या बदन खुजलाता रहता था.

यह क्रम भी अधिक दिन नहीं चल सका. उसकी ताकत जवाब देती गयी. शरीर जीर्ण होता गया. पंजों और हथेलियों के बल चलने की सामर्थ्य नहीं रही. कूल्हों को रगड़-रगड़कर चलना भी धीरे-धीरे कम होता गया.

लोगों को भी अब उसके प्रति दया नहीं रह गयी. चलने-फिरने में असमर्थ, वह किसी के भी घर के आगे मल-मूत्र कर देता था. भला लोग क्यों बर्दाश्त कर लें? घड़ी-घड़ी एक पगले का गू-मूत उठाते फिरें! यहां अपने बच्चों के गू-मूत तक से घृणा आती है. इसका क्या है, जहां चाहे हग देगा. . . मत दिया करो साले को खाना. देते भी हो तो थोड़ा-बहुत. सारे दिन गांव भर में खाता है, जहां चाहे गंदगी कर देता है.

उसकी हालत जब दिन पर दिन बिगड़ती गयी, घंटों एक ही जगह पर पड़ा-पड़ा सुन्न रहने लगा तो लोगों को शंका होती थी, कहीं मर तो नहीं गया. . . .जरूर आफत खड़ी करेगा यह. जिसके दरवाजे मरेगा, उसी की आफत आ जायेगी. पुलिस-कचहरी के चक्कर उसे ही लगाने पड़ेंगे.

सबने एकमत होकर यही समझा उसे जितनी जल्दी हो सके पुलिस के हवाले कर देना चाहिए. उसी समय आदमी भेजे गये और उसी शाम किसी तरह से उसे पुलिस-जीप में फेंका गया. गांव में चैन की सांस आयी.

थाने में भी उसके मर जाने पर झंझट ही था. दस तरह के कागज पूरे करो. कोई वल्ली न वारिश. कौन साले को दफनाने का जिम्मा लेगा. पोस्टमार्टम कराने जिला अस्पताल ले जाना पड़ेगा. दस तरह के झंझट. यही ठीक समझा गया कि उसे अपनी सीमा से बाहर कर दिया जाये.

इस समय उनकी जीप नारायणपुर और जमुनागढ़ को पार कर गयी थी. ठंड में दोनों कांस्टेबलों और ड्राईवर का बुरा हाल था. वे एक हाथ से ओवरकोट के कालरों को खींचे हुए थे और दूसरे हाथ से बीड़ी का कसा हुआ दम लगाते जा रहे थे, पर सर्दी का आक्रमण बीड़ी की गरमाहट से तेज था. उस पर वह बार-बार उन्हें पैरों को इधर-उधर घुमाने के लिए मजबूर कर देता था.

घंटा भर जीप दौड़ाने के बाद भी उन्हें उचित जगह नजर नहीं आ रही थी, जहां वह चैन से रह सके. अगर कुछ और जी गया तो लौटकर उनकी सीमा में न आ सके.

आखिर बहुत खोजने के बाद, उनकी सीमा से काफी दूर छोटा नानकपुर और बामनटीला पुलिस चौकी की सरहद के बीच बांस के छोटे से जंगल का स्थान उचित जान पड़ा, क्योंकि अगर पता चल भी गया तो दूसरी चौकीवाले यह नहीं कहेंगे कि अपनी बला हम पर लाद गये. सीमा के बीच तेरा-मेरा कहने में ही कहानी खत्म हो जायेगी.

उसे पत्तों के बिस्तर पर आराम से लिटाकर वे वापस चल पड़े. सर्दी का प्रकोप बढ़ता जा रहा था और वे अपने बचाव में लगे हुये थे. □

● द्वारा: एन. एस. रावत, 107 दरियागंज, नयी दिल्ली-2

चलते-चलते

"अब मैं आप से नहीं पढ़ सकूंगी. लोग उंगलियां उठाने लगे हैं."

"गुरु-शिष्या के संबंध पर भी! कौन हैं वे नीच लोग?"

"उनको तो मैं नहीं जानती किंतु स्वयं मेरे पिताजी को शक हो गया है."

"उन्हें विश्वास नहीं था तो मुझे क्यों रखा? किसी अध्यापिका का प्रबंध कर लेते."

"आपसे पहले मुझे आशा मिस पढ़ाने आती थीं. उन्हें भी जाना पड़ा. उनके और पिताजी के संबंधों पर मां को शक हो गया था.

—रामतीरथ पाल 'पुष्कर'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवाशिष सेन गुप्ता के जीवन का एक दिन. . .

पृष्ठ 21 से जारी

दुलाल बाबू साढ़े पांच के बाद आते हैं और आते ही जल्दबाजी में कागजों को इधर-उधर उलटने-पलटने लगते हैं. एक बार उनकी निगाह मेरे चेहरे पर ठहरती है, फिर जैसे परिचय के अभाव में वह अपना मुंह दूसरी तरफ कर लेते हैं. मैं उन्हें अपने बारे में बताता हूं तो वह 'ओ हां' के साथ बैठते हैं और हाथ के इशारे से मुझे सामने की कुर्सी पर आ जाने को कहते हैं.

मैं बंगला में लिखी हुई ऐप्लिकेशन दुलाल बाबू के सामने रख देता हूं. वह आंखें छोटी करते हुए पढ़ने का उपक्रम करते हैं, फिर सिर उठाकर मेरे चेहरे की ओर देखते हैं, "देखो देवाशिष, बात यह है. . .एक तरह से पहले पंद्रह खिलाड़ियों का चुनाव तो हो चुका है. अब दो-चार रिजर्व सरप्लस चाहिए सो उसके लिए मैं कोशिश कर रहा हूं लेकिन. . . अभी कुछ कह नहीं सकता. . .वैसे ठीक से प्रैक्टिस करते रहे तो अगले साल के लिए चांस हो सकता है. . .आज का खेल देखा?. . .माईरी, शोत्ती, की शेमफुल प्रदर्शन!"

मेरे मन में मन्ना से सीखी गयी भद्दी गालियों की शृंखला उभरनी शुरू होती है, लेकिन बाहर से मैं औपचारिकतावश मुस्कराता रहता हूं. दुलाल बाबू टेबल से जेमक्लिप उठाकर उसे सीधा करते हैं, फिर उससे अपने दांत खुरचने लगते हैं. मैं उठता हूं और जल्दबाजी में हाथ जोड़ता हूं. मेरी नाराजगी को भांपते हुए दुलाल बाबू दांत खुरचते-खुरचते मुझे पुचकारते हैं, "देखो देवाशिष!. . .फुटबालेर माने टा होच्छे लांग पासिंग!. . .लांग पासिंग का सॉलिड होना बहुत जरूरी है. आजकल के लड़के कड़ी मेहनत का खेल खेलना नहीं जानते. नहीं, मैं तुम्हारी बात नहीं कह रहा, लेकिन. . ."

साला! मैं केबिन से बाहर आकर सड़क पर पड़े 'किसान जैम' के खाली टिन को लात लगाता हूं. दुलाल बाबू को मेरी मामूली वेशभूषा और बातचीत के ढंग से ही अंदाज लग गया होगा कि इन तिलों में तेल नहीं. मन्ना ने कहा भी था कि बेटा, ए-डिवीजन तक पहुंचने के लिए पोलसन मारना होगा, माल ढीला करना पड़ेगा. . .ऐसे नहीं चलेगा. . .

भीड़ भरी छियत्तर नंबर की बस का हैंडल पकड़कर लटकता हुआ मैं ऐस्प्लेनेड से वापस लौटता हूं. एक बुढ्ढा मेरे पैर पर पैर रख देता है तो मैं दुलाल बाबू का सारा गुस्सा उस बुड्ढे पर निकालता हूं. बस में सफर कर रहे दो-चार निष्पक्ष समालोचक मुझे डांटते हैं और ज्यादा 'तेल-प्याजी' न करने की नेक सलाह देते हैं.

नुक्कड़ की दोतल्ला बाड़ी की लगभग सारी बत्तियां गुल हैं. केया चौधरी और उसके घर के लोग कहीं बाहर गये हैं. घर की गली के पास बाच्चू, तापस और रंजीत दोपहर के फुटबाल मैच पर एक्सपर्ट अड्डेबाजी करते हुए मिलते हैं. मैं दूर से ही हाथ हिलाकर उन्हें अपनी व्यस्तता के बारे में जानकारी देता हूं और चुपचाप घर के अंदर घुस जाता हूं.

ग़ज़ल

▣ राजेंद्र चांद

गैर मुमकिन है उसे राह पे लाया जाये,
डूबनेवाले को हरगिज न बचाया जाये.

जहर सच्चाई का बेहतर है कि हम खुद पी लें,
शहरे-ख्वाबीदा में किस-किसको जगाया जाये.

आपसे मिल के बहुत खुश हूं मगर डरता हूं,
इस बुलंदी से कहीं मुझको गिराया जाये.

भीड़ में जाने कहां छूटी थी उंगली खुद से,
अब तो घर मेरे मुझे ढूंढ ले लाया जाये.

अपने चेहरे पे कोई चेहरा लगा लूं मैं भी,
आप और मुझ में कोई फर्क न पाया जाये.

बाथरूम की बत्ती जलते देखकर ही अंदाज लग जाता है कि दीदी भीतर हैं. मैं खामोशी के साथ सीढ़ियां चढ़ता हुआ ऊपर जाता हूं और दुर्भाग्यवश सीधा बुड्ढे से टकरा जाता हूं.

"देबू! आवारागर्दी हो गयी आज की?" बुड्ढे का ओपनिंग डायलॉग होता है.

मैं चुप रहता हूं.

"गुहा सर के घर गया था. . .? हरामजादा, बोलता क्यों नहीं, गुहा सर के घर गया था?"

मैं बुड्ढे के गुस्से को तौलता हूं, फिर यथासंभव उसके धैर्य को चरम सीमा तक पहुंचाते हुए धीरे-धीरे बोलना शुरू करता हूं, "गया था, लेकिन वह दवाई खाकर सोये हुए थे!"

"कौन-सी दवाई?" कुछ आश्चर्य दिखाते हुए बुड्ढा कहता है.

'उबला हुआ घोड़े का अंडा!' मैं कहना चाहता हूं लेकिन अपने तात्कालिक हित को ध्यान में रखते हुए नहीं कहता.

"दोपहर को खाना खाने के बाद नींद की दवा खाकर सोते हैं. तब किसी को उठाने की इजाजत . . ." मैं मामूली झूठ का सहारा लेता हूं, "मैं एक घंटा इंतजार करता रहा, लेकिन नहीं उठे. . ."

"बैंकिंग सर्विस का फार्म भर दिया?" बुड्ढा गियर बदलता है. इस गुगली के लिए मैं जरा भी तैयार नहीं हूं.

"अभी खाना खाकर भरता हूं. . ." मैं हकलाता हूं. कहना चाहता हूं कि फार्म भरने का फायदा, इससे पहले जो पचासों फार्म भरे, उनका क्या हुआ? एक भी इंटरव्यू आया? लेकिन मेरे बोलने से पहले बुड्ढे की डांट का फारमूला 44 चालू हो जाता है, "यहां मैं दिन-रात चिंता में मरा जा रहा हूं और यह लड़का है कि इसे जरा भी परवाह नहीं. इससे तो अच्छा था कि पैदा होते ही मर गया होता या न पैदा होता!" यह और इसी तरह की अन्य चुनिंदा गालियां . मैं कुछ देर तक अचकचाया-सा खड़ा रहता हूं, फिर उलटे पांव नीचे उतर आता हूं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीदी बाथरूम से निकलकर तौलिए से अपना मुंह पोंछ रही है, "क्यों रे चुन्नी गोस्वामी!" उसकी आवाज का व्यंग्य मुझे भीतर तक बींध जाता, "क्या हुआ तेरी ए-डिवीजन लीग का? मोहन बागान की तरफ से खेलेगा या ईस्ट बंगाल से?"

"ज्यादा बड़बड़ मत कर तो!" मैं खीझकर चिल्लाता हूं, "जिस दिन खेलूंगा उस दिन अपने-आप दिख जायेगा!"

लेकिन मेरी आवाज में वह जोश, वह आत्मविश्वास नहीं है जो सुबह था. दीदी की हंसी के हर दौर के साथ मेरी झुंझलाहट बढ़ती जाती है. साला दुलाल बाबू हरामी!..

रात का खाना खाते-खाते 'लोडशेडिंग' हो जाती है. मेरा मन कुछ उखड़ा-उखड़ा है. अंधेरे में ही अपने हाथ धोकर मैं चुपचाप दरवाजे से बाहर निकल आता हूं. गली में सन्नाटा और घुप्प अंधेरा है. मुझे लगता है कि इस अंधेरे के कारण मोड़ की दोतल्ला 'बाड़ी' में केया चौधरी जरूर बालकनी में आ खड़ी हुई होगी. लेकिन उस पूरी इमारत में हलचल का नामोनिशान तक दिखायी नहीं देता.

मेन रोड के पासवाली पुलिया से रंजीत और श्यामलदा के बहस करने की आवाजें आ रही हैं. मैं उस ओर बढ़ता हूं तो रंजीत का तीखा स्वर हवा में गूंजता है, "की बोलबो श्यामलदा! अपने कॉलेज का पढ़ाई का स्टैंडर्ड एकदम गिरता जा रहा है. इस बार बैंकिंग सर्विस की परीक्षा में एक भी लड़का पास नहीं हुआ, मोटर पार्ट्स वाले के बेटे आशुतोष को छोड़कर! की अवस्था, शोत्ती?!"

"दुर साला, क्या पोलीटीशियन जैसा बात कर रहा है!" श्यामलदा झुंझलाकर कहते हैं, "तू भी पैसा ढीला कर अंटी से और हो जा बैंकिंग सर्विस परीक्षा में पास उस आशुतोष की तरह! है तेरे पास दो हजार रुपया घूस देने के लिए?... बोल कितने सर्टीफिकेट चाहिए?"

श्यामल दा के प्रवचन में क्षण भर के लिए मेरी अपनी तकलीफ झिलमिलाती है, फिर एक झटके के साथ अपनी सोच को तोड़कर मैं बाच्चू के साथ दोपहर के मैच के बारे में बात करने करने लगता हूं. शुरोजित सेनगुप्ता की ड्रिबलिंग, दोनों तरफ से आधे मन से खेला जाता खेल और देखनेवाली भीड़ का गुस्सा. बाच्चू बताता है कि वह बमुश्किल घोड़े की दुलत्ती से बचा. सब लोग हंसते हैं और इसके साथ ही श्यामलदा मेरी आंखों में देखकर पूछते हैं, "क्यों रे देबू, तेरी नौकरी का कुछ हुआ?"

दो-चार क्षणों की असमंजस भरी खामोशी, और उसके बाद मैं दुबारा अजय बोस की दिलकश आवाज के साथ उस काल्पनिक फुटबॉल के पीछे दौड़ने लगता हूं, यह बैक पास. यह साइड किक. यह फॉरवर्ड, यह सुंदर ड्रिबलिंग और एकदम गोल के पास और यह गोल!.. .फुटबाल के इतिहास में देवाशिष सेन गुप्ता का यह पहला शानदार गोल.. .तालियां! तालियां..!!

बहस आधी रात तक चलती रहती है. कलकत्ता में फुटबॉल का गिरता स्तर, 'मजदूर' में अमिताभ की शानदार एक्टिंग, पश्चिम बंगाल की राजनीतिक समस्या और बाच्चू द्वारा आज ट्राम में देखा गया 'हाई क्लास माल'. बमुश्किल इस जादुई दुनिया से अपने-आपको अलग कर मैं दोस्तों को अलविदा कहता हूं और न चाहते हुए भी घर की तरफ घूम जाता हूं.

आहिस्ता-से दरवाजा खोलकर भीतर घुसता हूं तो ऊपर बरामदे से बुड्ढे के खांसने की आवाज आती है. सांकल की हल्की-सी आवाज से वह चौकन्ना होकर उठ बैठता है, "कौन है?...कौन, देबू?"

मैं दरवाजे से सटा चुपचाप खड़ा रहता हूं, एक नामालूम इंतजार में. अभी उस ओर से खांसी के ताजा दौर के साथ विशेषण 'हरामजादा' उभरेगा जो खास मेरे लिए होगा.

लोडशेडिंग अभी कुछ देर पहले ही खत्म हुई है. बिस्तर की चादर हटाकर मैं लेटने को होता हूं कि सामने टेबल पर पड़े कागजों के बीच रखे कोआपरेटिव बैंकिंग सर्विस के फार्म का खयाल आ जाता है. बुड्ढे के घरेलू गाली-गलौज को माफ कर मैं जम्हाई लेता हूं और बमुश्किल कलम लेकर फार्म भरने बैठ जाता हूं. लेकिन अपना नाम भर चुकने के बाद मेरी कलम आगे नहीं चलती. लगता है कि दुलाल बाबू जैसा ही कोई 'टेंटियल' मेरे इस फार्म को चेक करेगा और उसके बाद इतमीनान से उसे रद्दी की टोकरी में फेंक देगा.

निरर्थकता के भरपूर एहसास से गुजरते हुए मैं बत्ती बंद करता हूं और बिस्तर पर ढह जाता हूं. लेकिन जादुई अंधेरे में एक बार फिर वही मुस्कराहट भरा चेहरा मेरी आंखों के सामने सिनेमास्कोप की तरह फैल जाता है. केया चौधरी नुक्कड़ पर रहनेवाली लंबे बालोंवाली वह लड़की जिससे मैंने आज तक बात नहीं की है.

मुस्कराकर करवट बदलते हुए मैं तय करता हूं कि कल रात के दृढ़ निश्चय के मुताबिक मैं अलस्सुबह उठूंगा और निक्कर-कमीज कसकर फुटबॉल प्रैक्टिस के लिए निकल जाऊंगा. पंद्रह खिलाड़ियों के चुनाव के बाद अभी रिजर्वस का लिया जाना बाकी है और दुलाल बाबू ने कहा था कि आज कल फुटबॉल के खेल में लांग पासिंग का मजबूत होना बहुत जरूरी होता है.

● 99 जी, एफ ब्लॉक, न्यू अलीपुर, कलकत्ता-700053

चलते-चलते

"बेटा, अगली बस से, जल्दी वापस शहर लौट जाओ, जोरदार बारिश होने को है. कहीं रास्ते बंद न हो जायें? वह बेचारी चिंता के मारे रातभर परेशान होती रहेगी."

वह निरुत्तर-सा आज्ञाकारी बेटे की तरह लौट पड़ा. घर पहुंचा तो दरवाजे पर मोटा-सा ताला चमक रहा था, पत्नी पड़ोसियों के साथ 'नाईट शो' देखने गयी थी. □

—सुदर्शन राघव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आते हुए लोग

किसी पति की जिंदगी में दूसरी औरत का आना किसी को भी अच्छा नहीं लगता—न घर को, न परिवार को, न समाज को. और कानून ने तो इस पर प्रतिबंध ही लगा रखा है, लेकिन दूसरी औरत है कि धड़ाधड़ बसे घरों को बिगाड़ रही है. जवान हो चुके बच्चों की जिंदगी में कैसा तो जहर घोल देती है यह दूसरी औरत?

'आते हुए लोग' शृंखला की बत्तीसवीं कड़ी—

पिछले पंद्रह दिनों में मां के दो पत्र आ चुके हैं. वह समझती है कि पिता का यह अंतिम समय है. इन पंद्रह दिनों में वह बेहद उलझ गयी है—कभी मन होता है अपने को काम में इतना डुबो दे कि यादों का हर काफिला उसके आगे से अनदेखा ही निकल जाये. इसके विपरीत कभी अपने आपको निपट अकेला, खाली-खाली-सा रखने का मन हो आता है, जिससे कि जितने भी स्मृति-दंश हैं, सब अपनी पूरी ताकत से उसे डसें और वह उन्हीं के घेरे में दम तोड़ दे.

इधर दो दिन से उस पर अकेलेपन का भूत सवार है. वह काम पर भी नहीं गयी. उसे प्रतीक्षा है एक समाचार की.

दुर्वासा की मृत्यु

■ जसविंदर यशी

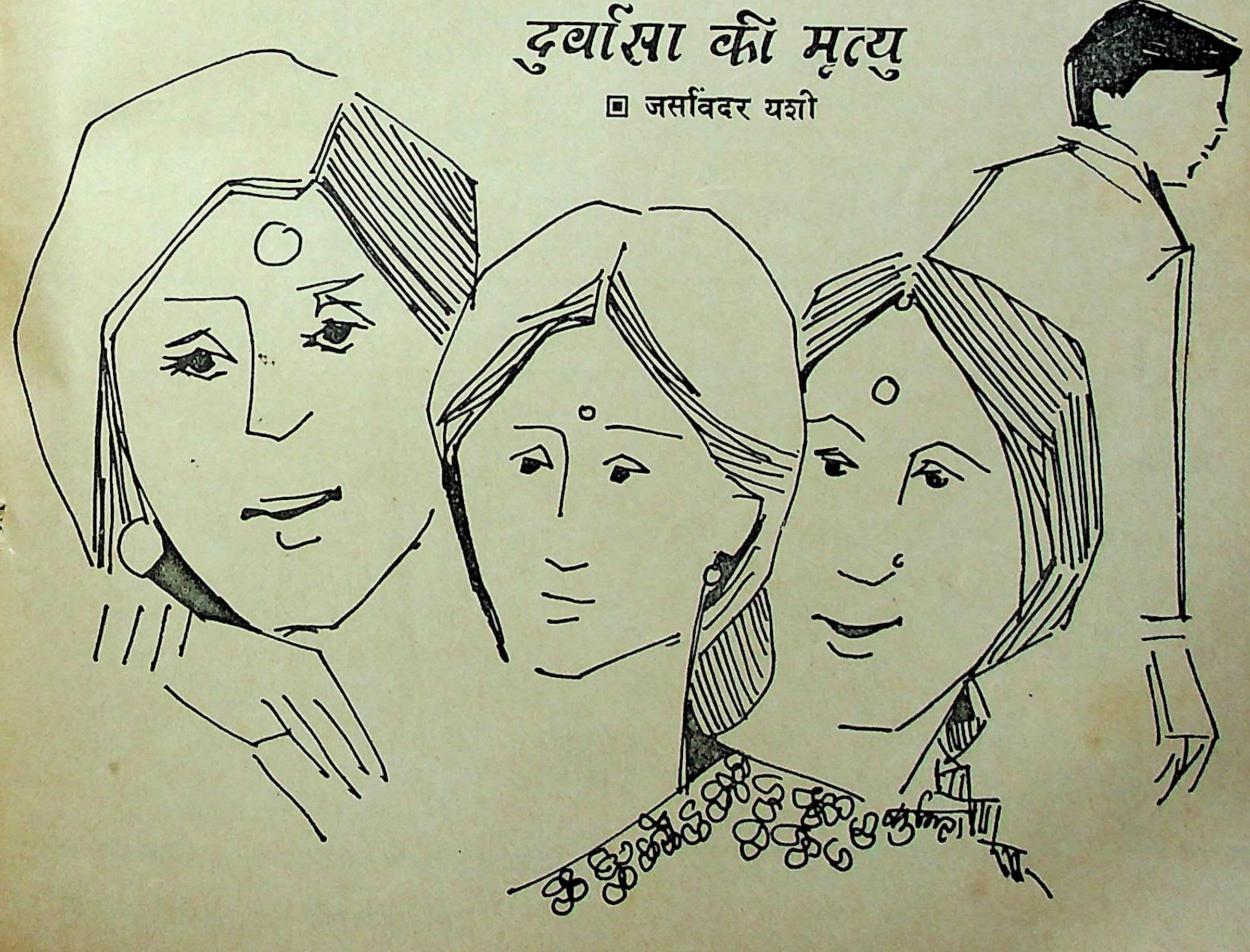

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीदी... कहते हैं बुरी खबर है, कौन जाने क्या अच्छा है और क्या बुरा!

दरवाजा बंद नहीं है, फिर भी किसी ने घंटी पर हाथ रख दिया है. डिंग-डांग और उसके मुंह से जाने कैसे निकल पड़ा 'पूसी'ज इन द वेल'. हां शायद बिल्ली सचमुच कुंए के अंदर गिर गयी है, कभी वापस बाहर न निकलने के लिए.

"हेलो शकुन." उसका अनुमान एकदम ठीक था. आने वाला सुधीर ही था और उसका चेहरा यूं डरा हुआ था जैसे उसकी जेब में पड़ी खबर शकुंतला की न होकर अपनी ही हो. तार उसकी ओर बढ़ाते हुए सुधीर ने एक बार नजर भर उसे देखा. यह एक आमंत्रण था साझेदारी का, दुख की भी और सुख की भी. तार उसने पढ़ा, इसी की तो स्तब्ध प्रतीक्षा थी. एक गहरी सांस-सी उसके भीतर से उठी, जिसे उसने एक छोटी सी 'हूं' में समेट लिया और तार सुधीर की ओर बढ़ा दिया.

"बीमार थे?" ऐसे मौकों पर किया जानेवाला पहला आम सवाल यही होता है.

"हां." अपना संक्षिप्त उत्तर उसे कमरे में अकेली घूमती मक्खी-सा लगा, जो पूरा कमरा खाली होने पर भी बार-बार मुंह पर आ बैठती है. सुधीर ने शायद इस मक्खी को मारने के प्रयत्न में अपना हाथ हल्के से शकुंतला के कंधे पर रखा. उसे लगा कि वह रो देगी, लेकिन आंखों में हल्का-सा गीलापन तैरा और होंठ जरा-सा भिंचे, फिर पूर्ववत हो गये. सुधीर का हाथ वहीं रहा और हाथ भर लंबा मौन दोनों के बीच खिंच आया. उसे खत्म करते हुए सुधीर ने फिर रूटीन वाक्य दोहराया, "घर जाना होगा न!"

घर के नाम पर जाने क्या कुछ भीतर उमड़ा, जिसे उसने झट से समेटकर मन के एक अंधेरे कोने में रख दिया और हाथ मलते हुए जैसे घर की गर्द भी झाड़ दी हो, वह बोली, "मैं नहीं जाऊंगी."

इस पर सुधीर का हाथ उसके कंधे से हट गया. शायद मन ही मन स्त्री-चरित्र की महिमा समझने का यत्न करने लगा. दो वर्षों की मैत्री के बाद भी यह अंतर उन दोनों में बना हुआ था कि जिस प्रश्न से दूसरा बचना चाहे, उसका उत्तर देने को उसे बाध्य न किया जाये. इस समय सुधीर उसी समझौते के अंतर्गत चुप था. यह चुप्पी और लंबी न खिंच जाये, इस डर से वह उठा और, "मैं काफी बनाता हूं, पियोगी न" कहता बिना उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये रसोईघर, जो उसी कमरे का एक कोना था, में जाकर व्यस्त हो गया.

शकुंतला का हाथ स्वतः मेज पर रखे तार पर जा पड़ा. उसे लगा कि पिता का चेहरा उस तार के पीछे से झांक रहा है. लेकिन वह इस समय मां का चेहरा देखना चाह रही थी और अनेक प्रयत्नों के बाद भी मां की आकृति आंखों के आगे स्पष्ट नहीं हो पा रही थी. पिता के चेहरे पर तो आज भी वही औरत टंगी दिखायी दे रही थी, जिसकी हत्या शकुंतला ने अनेक बार स्वप्नों में की थी.

मेज पर प्याले रखने की आवाज हुई तो उसने आंखें खोलीं. कांच-सा कुछ चुभ रहा था. उसने चुपचाप चाय का प्याला उठा लिया. इस समय वह उस औरत को याद करना नहीं चाहती थी, लेकिन चाय के दो घूंटों के साथ ही वह फिर उसके अंदर प्रवेश कर गयी.

उस दिन भी उसने दो ही घूंट भरे थे और अपना प्याला मेज पर रख वह कमरे से बाहर हो गयी थी. पिता का उस औरत के कंधे पर रखा हाथ शकुंतला की आंखों में बेतरह चुभ रहा था. कमरे से निकल वह रसोई की तरफ गयी. मां एक हाथ से कटोरे में बेसन घोल रही थी और दूसरे हाथ से दुपट्टे के छोर से अपनी आंखें मल रही थी. मां ने एक बार भी उसकी ओर नहीं देखा. वह समझ गयी. मां उससे बचना चाहती है. वह फिर भी खड़ी रही तो मां ने आंखें रगड़नी बंद कर दीं. कड़ाही में गरम होते तेल पर अपनी सुर्ख

● व्यंग्यचित्र : उमेश कवले

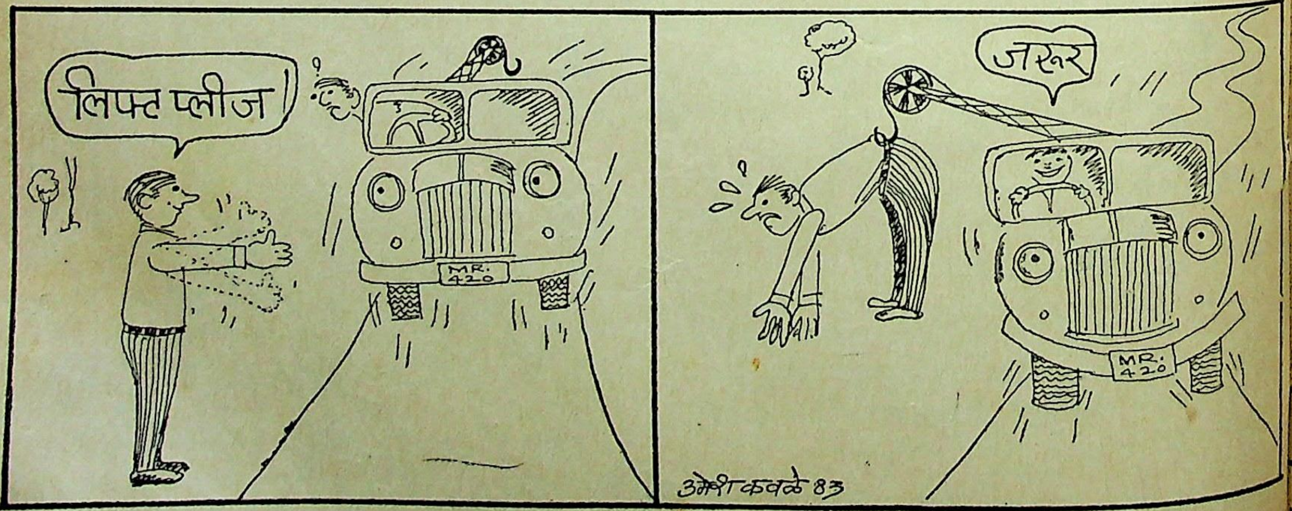

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▣ जसविंदर यशी

आत्मकथ्य या परिचय के नाम पर विशेष कुछ नहीं, बड़े सीमित से दायरे में जिंदगी बंधी है. प्रकाशन के नाम पर कुछ कहानियां और लेख छिटपुट पत्रिकाओं में प्रकाशित.

आंखें जमाये उन्होंने इतना ही कहा, "शकुन, तुम जाओ अपने कमरे में."

वह अपने कमरे में चली गयी. घंटे भर बाद बाहर गाड़ी स्टार्ट होने की आवाज आयी. वह तब भी अपने कमरे में ही रही. वह जानती थी, अब पिताजी मां को ढूंढ़ेंगे और चिल्लाकर अपने लिये खाना मंगवायेंगे. उस रात पिता को छोड़ और कोई खाना नहीं खायेगा, वह यह भी जानती थी और यह भी कि सब काम निपटाने के बाद मां देर तक बाथरूम में बंद रहेंगी और आंखों पर बार-बार छींटे देकर जाने क्या धोने की चेष्टा करती रहेंगी.

"चाय तो ठंडी हो गयी शकुन." उसने सचमुच ही दो घूंट भरकर प्याला मेज पर रख दिया था. सुधीर ने कहा तो वह मरी–सी मुस्कराहट होठों पर ले आयी और दोनों कप उठाकर उसने नल के नीचे रख दिये.

आते-आते रैक पर से उसने छोटी–सी एलबम उतारी और हाथ में लेकर उलटने लगी. वह इस वक्त मां की तस्वीर देखना चाहती थी. उसी के बारे में सोचना चाहती थी. 'मां' आखिर तस्वीर देखते हुए वह बोली. एलबम लिये-लिये सुधीर के पास आकर वह तस्वीर उसके आगे कर दी और जहां मां थी, तस्वीर के उस हिस्से पर अंगुली रख दी. सुधीर तस्वीर देखते-देखते बोला, "यह साथ में कौन है?"

"दूसरी औरत." दो शब्दों में अपने भीतर का सब गुबार निकाल फेंका.

सुधीर की आंखों का असमंजस उसे सुख दे रहा था. वह हंसी, "नहीं समझते?"

सुधीर ने आंखें झुका लीं. वह समझ गया था.

"इसी से तुम घर नहीं जाना चाहतीं."

उसने सिर हिलाया स्वीकृति में.

"और इसी से तुम यहां हो, घर के बाहर, घर से दूर?"

"हूं".

"नाम शकुंतला हो तो शाप भी झेलना ही पड़ता है, पर उस अध्याय का तो अब अंत हो गया. जीते जी जो हक तुम्हारी मां का न हुआ, मर कर तो पिता उन्हीं को दे गये. विधवा होने का हक तो उस दूसरी औरत का नहीं है शकुन. मां को तुम्हारी जरूरत है. एक बार उन्हें देख आओ. सुधीर ने बांह बढ़ा उसे बच्चों-सा घेर लिया.

अब इस घेरे में कोई घुटन नहीं थी. अब वह शापमुक्त थी. इसी शाप-वश दो वर्षों में कभी अपने सुधीर को अपने निकट न आने दिया था. अब वह उस औरत से नहीं डरेगी. वह मां को देखने भी जायेगी और मां को सुधीर से भी मिलवायेगी. □

● 247/7, अरबन एस्टेट, गुड़गांव-122001 (हरियाणा)

आसपास बिखरी कहानियां

पूर्वनियोजन

▣ हसन जमाल

पूर्वनियोजन के प्रति त्रिवेदी महोदय दृढ़ संकल्प थे. उनकी धारणा थी कि उनका जन्म उनके माता-पिता के पूर्वनियोजन का सुफल था. स्वयं उनका हर कार्य पूर्वनियोजित होता था. पूर्वनियोजित शिक्षोपरांत, पूर्व नियोजित नौकरी. पूर्वनियोजन के फलस्वरूप एक पुत्र व एक पुत्री के पिता बने. पूर्वनियोजन के मार्ग पर पुत्री ने बाबुल छोड़ा. पुत्र ने सुंदर पत्नी पायी. उनकी प्रि-प्लानिंग की गाथा सुन-सुनकर यार-दोस्त उपहास करते, "त्रिवेदी तेरी मृत्यु में तेरी प्लानिंग काम न आयेगी. कुछ प्रि-प्लानिंग भगवान पर छोड़ दे."

त्रिवेदी उपहास का घनघोर विरोध करते.

मिसेज त्रिवेदी की मृत्यु के दिन उनके द्वार के बाहर दो अर्थियां तैयार की जाने लगीं तो यार-दोस्त बगली खिसियाहट में कहने लगे, "पूर्वनियोजक हो तो ऐसा, भगवान की भी न चलने दी!" □

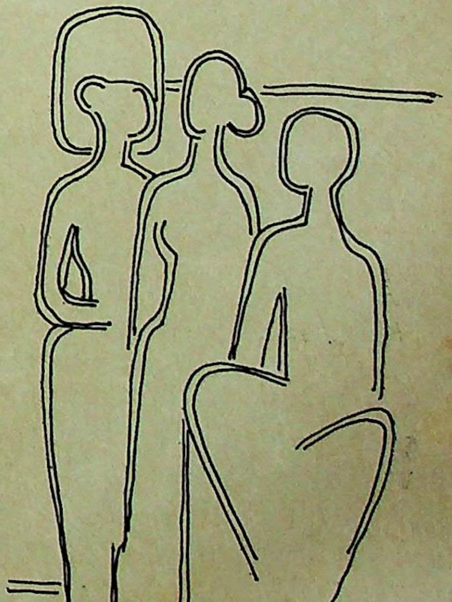

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने लिखना क्यों छोड़ा

• इब्ने इंशा

वे कौनसे हादसे होते हैं जिनसे घबराकर साहित्यकार लिखना ही छोड़ देता है? पेश है इस व्यंग्य-कथा में एक साहित्यकार के उदय और अस्त होने की गाथा.

पश्चिमी विद्वान हक्सले से किसी ने पूछा कि लेखक बनने के लिए क्या-क्या चीजें जरूरी हैं. उसने बेझिझक जबाव दिया कि 'एक कलम, एक दवात और कुछ कागज'. एक पत्रिका में उर्दू की मशहूर कहानीकार जमीला हाशमी की भेंटवार्ता प्रकाशित हुई है, जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया है कि 'कुछ कागज' से क्या मतलब है. फरमाती हैं कि जब मेरा कहानी लिखने को जी चाहा तो मैंने अपने अब्बा के हिसाब-किताब के रजिस्टर की जिल्द तोड़ी और उसमें लिखना शुरू कर दिया. इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि अगर उनके अब्बा हुजूर हिसाब-किताब न रखा करते, जैसा कि बाज लोग नहीं रखते, और जमीला के हाथ उनका रजिस्टर न पड़ता तो वह कहानीकार नहीं बन सकती थी.

कम लोगों को मालूम होगा कि हमने साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश कहानीकार के रूप में किया था और इसके लिए निहायत उम्दा चिकने कागजों की एक कापी सजिल्द तैयार करायी थी. एक रोज हम कापी को कहानी के एक नाजुक मोड़ पर बिस्तर पर खुली छोड़ चले गये. वापस आकर खोला तो सूरत कुछ यों नजर आयी.

अमजद ने कहा—मेरी रानी बोलो, तुम्हें क्या चाहिए? कहो तो आसमान के तारे तोड़कर तुम्हारे कदमों में बिछा दूं, तुम्हारा दामन बहार के रंगीन फूलों और कलियों से भर दूं.

रानी ने कहा—अमजद, मुझे दुनिया में और कुछ नहीं चाहिए फकत... बिनौले —डेढ़ मन
भूसा —दस बोरी
नमक —एक डला
गुड़ —ढाई मन

हमने झुंझला के वह पन्ना फाड़ के फेंक दिया. थोड़ी देर में क्या देखते हैं कि हमारे चचा ऐनक को नाक की फुनंग पर जमाये कुछ ढूंढ़ते फिर रहे हैं. बोले, "बेटा, यहां एक कापी में कुछ हिसाब लिखा था मैंने. मंडी जा रहा हूं सौदा लाने. कहां गयी वह कापी?"

खैर, हमने फिर नये सफे पर लिखा...

अमजद ने आंखों में आंसू भरकर कहा—मेरी गुलाम फातमा, अब मैं गांव में वापस आ गया हूं और जिंदगी तुम्हारे कदमों में गुजारूंगा. रानी ने मुझसे दगा की. अब मुझे सच्ची मुहब्बत की कदर हुई.

गुलाम फातमा ने सिसकियां भरते हुए कहा—अमजद, अब मेरी जिंदगी में रह क्या गया है, चंद आंसू, चंद आहें और...

कमीजें बड़ी —पांच अदद
पाजामे छोटे —चार अदद
तकिये के गिलाफ —दस

हमने शोर मचा दिया, "यह क्या गजब कर दिया?"

बहन बोलीं, "अरे मियां, कुछ नहीं, धोबी का हिसाब लिखा है. इसे पहले 'दीवाने गालिब' के हाशिये पर लिखा करती थी, वहां अब जगह नहीं रही. यही खाली नजर आयी."

हमने कहा, "बहन, अब यह कापी तुम ही रखो, हमारे काम की नहीं रही!" चुनांचे उसी रोज कहानी-लेखक को अलविदा कहा और शेर कहने लगे क्योंकि उनको लिखने के लिए किसी कापी या रजिस्टर की जरूरत नहीं होती; उन्हें दरवाजे की चौखट पर लिखा जा सकता है, कमीजों के कफों पर लिखा जा सकता है.

हमारा एक नौकर हमें सलाह दिया करता था कि शायरी-वायरी छोड़िए, बजाजे की दूकान खोल लीजिए. इसमें बड़ा फायदा है. लेकिन पांचों उंगलियां एक-सी नहीं होतीं. एक जमाने में हमें सौभाग्य से एक ऐसा नौकर भी मिल गया था, जो नॉवल लिखने में खासी मदद दिया करता था. हम कोई अध्याय अधूरा छोड़कर कहीं बाहर चले जायें तो वापसी पर पूरा मिलता था. कई बार तो वह हमारी मौजूदगी में भी अपनी सेवाएं प्रस्तुत कर देता था कि साहब, आप लिखते-लिखते थक गये होंगे, अगर आप मेरी जगह थोड़ी देर फर्श पर पौंचे मार दें तो मैं एक अध्याय लिख दूं.

आप पूछेंगे, वह नौकर कहां गया? उसने हमारी नौकरी छोड़ दी और साहित्य के आकाश पर सूरज बनकर चमका. आज कौन है, जिसने तसनीम रूमानी का नाम नहीं सुना, वही तसनीम रूमानी, जो 'लाबी जुल्फें' और 'डूबते दरिया' नामक अमर उपन्यासों का लेखक है.

अभी पिछले दिनों बाजार में उससे मुठभेड़ हो गयी थी. हमने कहा, "जुम्मन मियां (उसका पैदाइशी नाम यही है, पुलिस के रोजनामचे में भी यों ही लिखा जाता है.) मेरा नौकर भाग गया है. तुम चाहो तो आ जाओ."

बोला, "साहब, आजकल मैं 'जलती परछाइयां' नाम की फिल्म बना रहा हूं. बहुत अच्छी जा रही है. आप चाहें तो अगली फिल्म के गानों के लिए आपको नौकर रख सकता हूं क्योंकि मुझे मालूम है कि आपका हाथ तंग रहता है, पैसे उससे ज्यादा दूंगा जितने आप मुझे देते थे!" □

● अनुवाद : लक्ष्मीचंद्र गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पखवारे की पुस्तकें

प्रगतिशील सोच से हटकर

■ पुष्पपाल सिंह

जब किसी प्रतिष्ठित कलम की कोई नयी रचना प्रकाश में आती है तो पाठक की उससे कुछ अधिक अपेक्षाएं होती हैं, क्योंकि वह रचनाकार से ऐसे सार्थक लेखन की आकांक्षा रखता है, जो सामाजिक परिदृश्य को उघाड़ता हुआ अपने समय के अहम सवालों से गहरे जुड़कर अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता की गवाही देता है अथवा मानवीय मन की अनचीन्ही गुत्थियों को सुलझाता हुआ अनदेखे कोनों-अंतरों को प्रकाश में लाकर मानवीय चरित्र की उदात्तता में विश्वास जगाता है. भीष्म साहनी ने नयी कहानी के समय से ही निरंतर सार्थक लेखन से जुड़े रहकर अपनी कहानियों में सामाजिक चिंताओं से सरोकार रखा है, किंतु इधर आकर वे चुक गये-से लगते हैं. नयी कहानी के दौर के बाद 'अमृतसर आ गया है', 'अभी तो मैं जवान हूं', 'पटरियां', 'साग-मीट', 'ओ हरामजादे', 'वाङ्चू' जैसी श्रेष्ठ कहानियों का रचनाकार 1981 में आकर 'मुर्ग-मुसल्लम' जैसी सामान्य-सी कहानी और 'शोभायात्रा' जैसा कहानी संग्रह देता है, जिसमें कुछ कहानियों के अतिरिक्त न तो उनकी 'उस्तादाना कलम' (प्रकाशकीय घोषणाओं में) का रंग दिखायी देता है, न ही उनके लेखन के प्रति कोई विशेष आश्वस्ति जग पाती है. लगता है हिंदी कहानी की तेज रफ्तार दौड़ में ये कहानियां बुरी तरह पिछड़ रही हैं, इनका आकर्षण महज भीष्म साहनी के नाम के कारण ही हो सकता है.

भीष्म साहनी की कहानियों से एक और अपेक्षा जगती है. उन्हें प्रायः प्रगतिशील या जनवादी सोच का कथाकार कहा जाता रहा है, किंतु 'शोभायात्रा' की कहानियां हमें इस सोच से हटती दिखायी देती हैं, जिनमें से अधिकांश में कोई गहरी सामाजिक संसक्ति दिखाई नहीं देती.

बात संग्रह की अच्छी कहानियों से शुरू की जा सकती है. निस्संदेह इस कथापुस्तक की सर्वश्रेष्ठ रचना 'शोभायात्रा' है, जिसमें पुरातन कथा में वर्तमान को संदर्भित किया गया है. यह कहानी अत्यंत कलात्मक ढंग से युगप्रश्न से टकराती है. कहानी की संवेदना का मुख्य धरातल यह है कि बिना भय के राजाज्ञा भी व्यर्थ साबित हो जाती है और जनता एक कड़े अनुशासन में ही ठीक रह सकती है. अपने इस रूप में कहानी युगीन संदर्भ में आपातकाल (इमर्जेंसी) के परिप्रेक्ष्य में और भी अर्थवान हो उठती है. कहानी का व्यंग्य यह भी है कि एक सत्य को मनवाने के लिए कितने ही अवांछित तरीकों का इस्तेमाल करना पड़ता है. अपने इस रूप में यह कहानी आपातकाल पर लिखी बहुत-सी कहानियों से बिल्कुल अलग है. कहानी की खूबी यह भी है कि लोककथा शैली का योग उसकी साहित्यिक गरिमा को खंडित नहीं होने देता, अन्यथा इस कथ्य पर बहुत-सी कहानियां महज न्यूजपेपर रिपोर्टिंग बनकर रह गयीं. 'फैसला' भी एक अच्छी कहानी है, जिसमें जज शुक्ला भ्रष्ट व्यवस्था से लड़ता हुआ अपने श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों की हत्या की पीड़ा भोगता हुआ निकृष्ट जीवन जीकर सोचता है —'एक सरकारी अफसर को फाइल का दामन कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए, जो फाइल कहे, वही सच है, बाकी सब झूठ है. . .' अपने समय संदर्भ को व्यक्त करते हुए व्यवस्था की भ्रष्टता पर बड़ा करारा व्यंग्य है, किंतु भीष्मजी की जनवादी सोच से यह अपेक्षित था कि वे शुक्ला के माध्यम से यह संकेत कर पाते कि व्यक्ति को इस भ्रष्ट-व्यवस्था से निरंतर लड़ना है, किंतु शुक्ला तो हिम्मतपस्त होकर बैठ जाता है. 'लीला नंदलाल की' भी इसी तेवर की श्रेष्ठ कहानी है, जिसमें पुलिस और न्याय की भ्रष्ट व्यवस्था को पर्त-दर-पर्त उघाड़ते हुए स्कूटर-चोरी के बहाने सामान्य व्यक्ति की मुसीबतों का चित्रण हुआ है. 'मेड इन इटली' भी भारतीयों की विदेशी वस्तुओं के प्रति 'क्रेज' पर तीखा व्यंग्य है, जिसकी मीरा रोम के सांस्कृतिक वैभव को नहीं, अपितु सिर्फ बाजार को देखने और 'शॉपिंग' करने को ही अपनी चरम उपलब्धि मानती है. 'खिलौने' कहानी में महानगरीय जीवन की व्यस्तता एवं आपाधापी के जीवन में संवेदनाओं के चुक जाने और स्वार्थपरता में व्यक्ति के आत्मीय संबंधों और व्यवहार के खोखलेपन का अच्छा चित्रण हुआ है. 'शोभायात्रा' की शेष कहानियां सिर्फ 'भरती' की कही जा सकती हैं. 'निमित्त' कहानी में प्रगतिशील सोच के कहानीकार पर भाग्यवादिता इस कदर क्यों हावी हो रही है, यह समझ में आने वाली बात नहीं है. 'भटकाव' में रोचकता होते हुए भी किसी सामाजिक चिंता से सरोकार नहीं है, कहानी महज एक सफल किस्सागोई का नमूना बनी रहती है, जिसमें बहनों के प्रेम-

● भीष्म साहनी

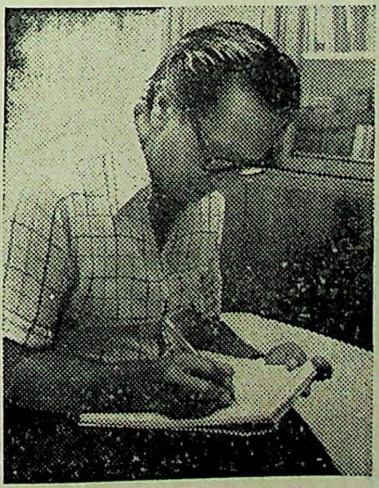

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसंगों का चटखारेदार वर्णन है, जिसके बीच से न कोई चरित्र उभर पाता है और न समस्या. 'रामचंदानी' भी एक संस्मरणात्मक चरित्र प्रधान कहानी है, जिसमें वर्णित स्थितियां किसी भी रूप में अपने वक्त के दौर को चित्रित नहीं कर पाती हैं. 'धरोहर' भी मात्र एक संस्मरण बनकर रह जाती है. 'सड़क पर' कहानी का कथ्य अच्छा होते हुए भी लेखक उस पर एक अच्छी कहानी नहीं बुन सका है.

इस संग्रह की अधिकांश कहानियां 'संस्मरण' की शैली में 'रेखाचित्र' की ओर आती लगती हैं, किंतु यहां कहानी विधा के शिल्पगत संक्रमण को ध्यान में रखते हुए भी यह अहम् सवाल उठाया जा सकता है कि 'अनूठे साक्षात्' जैसे विशुद्ध 'रेखाचित्रों' (अथवा 'संस्मरणों') को 'कहानी' कैसे माना जाये? किंतु भीष्म साहनी ने 'अनूठे साक्षात' को कहानियों में ही रखना उचित समझा है. यह बात अपनी जगह सही है कि आज कहानी में अनेक विधाओं की शैल्पिक प्रवृत्तियां अंतर्भूत हैं, किंतु फिर भी अपने 'कहानीपन' के कारण वह 'कहानी' है. 'अनूठे साक्षात्' में यह कहानीपन ही गायब है. 'शोभायात्रा' की कुछ कहानियों में शिल्पगत कमजोरी नजर आती है, जो भीष्म जी जैसे अरसे से लिखनेवाले कहानीकार से अपेक्षित नहीं है. 'निमित्त,' 'फैसला', 'रामचंदानी' आदि कहानियां शैल्पिक दृष्टि से चुस्त-दुरुस्त नहीं हैं. इन शैल्पिक अभावों के बावजूद भीष्म साहनी के कहानीकार के पास कहानी कहने का बड़ा सहज ढंग और व्यंग्य का बहुत तेज हथियार है, जिसका प्रयोग वे अत्यंत सहजता और शक्तिमत्ता से कर सकते हैं. संग्रह की 'मेड इन इटली' कहानी को इस कथन के प्रमाण-स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है. □

● शोभायात्रा (कहानी संग्रह): भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002 मूल्य : 18 रुपये.

प्रेमपरक कहानियां

▣ कुमुद शर्मा

दुर्गाप्रसाद श्रेष्ठ की जो कहानियां उनके ताजा संग्रह 'सोनिया' में संकलित हैं वे यदि अनुभूतियों की वैयक्तिक सीमा लांघकर आस-पास के यथार्थ व त्रासद परिवेश को देख पातीं तो अपनी प्रभाववत्ता का इच्छित परिणाम उपलब्ध कर पातीं. संग्रह की अधिकतर कहानियां रोमानी धरातल पर टिकी हैं. 'सोनिया', 'फुलियां', 'खंडित', 'हरोचा', 'नीमा पेम्मा', 'केटी' आदि कहानियां प्रेमपरक वैयक्तिक अनुभूतियों की कहानियां हैं, जिनमें यथार्थ का चित्रण रूमानियत से और भावना का द्वंद्व भावुकता से ढंक-सा गया है. 'सोनिया', 'फुलियां', 'हरोचा' में किशोर-मानसिकता से बुनी प्यार की संवेदना है. ये कहानियां एक भावात्मक प्रवाह, एक रौ एवं एक धुन में लिखी गयी लगती हैं. इसीलिए 'सोनिया', 'फुलियां' इन दोनों कहानियों का कथ्य लगभग एक जैसा है. लेखक इन दोनों कहानियों के नायक एवं नायिकाओं के व्यक्तित्वों को भी विविधता नहीं दे पाया है. दोनों कहानियों के नायक एक जैसी मनःस्थिति वाले मास्टर हैं तथा नायिकाएं एक जैसी मनोवृत्ति का परिचय देने वाली ग्रामीण किशोरियां हैं. अंत में दोनों कहानियों की नायिकाएं आकस्मिक मृत्यु का शिकार होती हैं. इनके प्रेमी कहीं न कहीं प्रेमिका की मौत का दोष स्वयं पर थोपते हैं.

कहानियों की मूल संवेदना बाह्य परिवेश का संस्पर्श कम ही करती हैं और जहां करती भी हैं, वहां मात्र पात्रों के अंतर्द्वंद्व को मुखर करने के लिए. 'सौंदर्य', 'नांग्ले', 'त्यौहार', 'गंगा चाची' आदि कहानियां यथार्थ के कुछ नजदीक होने के कारण अपना प्रभाव छोड़ती हैं. यद्यपि ये कहानियां प्राकारांतर से सामाजिक, आर्थिक एवं पारिवारिक जीवन की विषम स्थितियों की ओर इंगित करती हैं तथा इन कहानियों के पात्र सामाजिक, राजनैतिक जीवन से उपजे हैं, लेकिन वैयक्तिकता की छाप से ये कहानियां बच नहीं पायी हैं. 'त्यौहार' कहानी में बब्बन को पारिवारिक एवं सामाजिक विवशता के कारण सीधे-साधे ग्रामीण ग्राहक को ठगने का अफसोस है, लेकिन कहानी का प्रभाव वैयक्तिक है. संग्रह की ज्यादातर कहानियां प्रेमपरक हैं. प्रेम का स्वर मूलतः ट्रैजिक हुआ करता है. इसलिए इस संग्रह की अधिकतर कहानियां दुःखांत हैं. बेबसी व अवसाद के घुटे-घुटे स्वर के साथ ही कहानियां खत्म होती हैं. कहानियों की भाषिक संरचना में नेपाली शब्दों के प्रयोग के बावजूद सहजता एवं सरलता है. कहानियों का शिल्पात्मक प्रस्तुतीकरण भाव एवं कथ्य के अनुरूप है. वस्तुतः सूने क्षणों का सूनापन भरने तथा मनोरंजन की दृष्टि से यह संकलन पठनीय है. □

● सोनिया (कहानी संग्रह): दुर्गाप्रसाद श्रेष्ठ, प्रकाशक : हिंदी प्रचारक संस्थान, पिशाच मोचन, वाराणसी-221001 (उत्तर प्रदेश) □

संघर्ष और चेतना की कहानियां

▣ अश्विनी पाराशर

विभिन्न लेखकों के प्रकाशित कथा-संकलनों में से प्रत्येक की शीर्षक कहानी संकलित करके पूजन प्रियदर्शी ने 'शीर्षक कहानियां' का संपादन कहानी में उभरते नये दृष्टिकोण की प्रतिनिधि-प्रवृत्तियों का जायजा प्रस्तुत करने के ध्येय से ही किया है.

पिछले काफी समय से यह अनु[illegible] किया जा रहा है कि सामान्य [illegible] जिस प्रकार शोषण, अनाचा[illegible] अत्याचार और अन्याय का शिका[illegible] हो रहा है, व्यक्ति का साक्षात्का[illegible] जैसे-जैसे कुंठाओं, संत्रास और उत्पी[illegible] से होता रहा है, शोषण की प्रक्रि[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उतनी ही तेजी से वृद्धि हुई है. इसमें अर्थ के पाश में आबद्ध हुआ व्यक्ति अपनी बेबसी और असमर्थता के एहसास से क्षुब्ध तो अवश्य हुआ, लेकिन वह और अधिक जुझारू हो गया है. उसकी जिजीविषा भी उतनी ही प्रखर हुई है.

कविता की अपेक्षा कथा-साहित्य के प्रति सामान्यजन की अधिक रुचि के पीछे भी शायद यही कारण रहा है, कथा में व्यक्ति की अपनी कहानी और अपनी समस्याएं हैं. आजकल लेखक शायद इस बात के लिए प्रतिबद्ध भी है कि वह अपनी कथावस्तु को अधिकाधिक सामान्य जन के जीवन और जीवन की घटनाओं पर केंद्रित रखे. इसके लिए रचनाकार किसी मूल्य की वकालत नहीं करता है, बल्कि वह तो अंध विश्वास और हीनताबोध के प्रति वितृष्णा पैदा करने में ही अपनी सार्थकता की तलाश करता है. 'सूरज कब निकलेगा' और 'पीढ़ियों का खून' कहानियां इसी दृष्टि की परिचायक कहानियां हैं. जबकि ऊंचे लक्ष्य के लिए अपने स्वार्थ को त्यागने की मांग 'आवाज', 'काले आदमी' और 'उठो लक्ष्मी नारायण' में देखी जा सकती है.

चित्रा मुद्गल की कहानी 'जहर ठहरा हुआ' थोड़ी सामान्यलीक से हटकर परिवार पर केंद्रित हो जाती है, जहां संयुक्त परिवार की सुविधाओं और कठिनाइयों के बीच चलती हुई कहानी अंततोगत्वा परिवार-कल्याण की भावना से अनुप्रेरित मां के आपरेशन की सूचना पर समाप्त हो जाती है. एक मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक खींचातानी का एक मुख्य कारण परिवार-वृद्धि भी होता है. और समय रहते इस पर ध्यान न दिया जाये तो फिर यह स्वयं एक जटिल समस्या हो जाती है. इस तरह मनुष्य को उसकी अदम्य जिजीविषा से परिचित कराने के लिए कथाकार जहां 'दुखवा मैं बीतल रतियां' जैसी रचना लिखता है तो दूसरी ओर 'दिल्ली पहुंचना है' भी. वस्तुतः 'दिल्ली पहुंचना है' आज के शोषण के युग में आदमी से ऐसी ही भूमिका की मांग करती है. 'होइ है वहि जो राम रचि राखा' की भावना के छद्म को तोड़ने के लिए आदमी को खुद ही हथियार उठाने हैं. असगर वजाहत की कहानी इस मायने में एक चेतना का स्फुरण कराती है. संघर्ष ही आज का सत्य है. संघर्ष से ही दासता की जंजीर टूटेगी. इस स्तर पर संग्रह की अधिकांश कहानियां आश्वस्त करती हैं.

इस स्तर पर पूजन प्रियदर्शी का यह प्रयास एक प्रतिबद्ध रचनात्मकता का उदाहरण कहा जा सकता है. □

● **शीर्षक कहानियां (कहानी संकलन): संपादनः पूजन प्रियदर्शी; प्रकाशक: तिरुपति प्रकाशन, प्रेमपुरा, हापुड़ (उत्तर प्रदेश) पृष्ठ: 223, मूल्य: 30 रु.**

कुछ भी नया नहीं

▣ डॉ. बलदेव वंशी

कथा संकलन 'कहानी और कहानी' के कवर पर छपा है--'अखिल भारतीय कहानीकारों की कहानियां 1982'. संपादकों ने स्वयं को कुछ परिचित हस्ताक्षरों के साथ छापकर 'अखिल भारतीय' बना लिया है. 'अवैतनिक सेवा' का इतना लाभ तो होना ही चाहिए. समझ नहीं आया कि मेहरून्निसा परवेज, चित्रा मुद्गल, सुदीप आदि ने अपनी कहानियां किस कारण और क्यों इन्हें सौंप दीं? पुस्तकाकार रूप के इस साहित्य-सेवी प्रयास में, जिसे साहित्यिक गरिमा को झटककर नौसिखियों को 'अखिल भारतीय' स्तर हथियाने की हौस सवार है.

मेहरून्निसा की कहानी 'कोई नहीं' दुहाजू आदमी की पत्नी बनने की पीड़ा को लेकर लिखी गयी है. पुरुष पात्र--विवेक अपनी जिंदा पत्नी के रहते भी, जो गांव-घर में रहती है, नगर में शुभदा से विवाह कर लेता है. शुभदा को पता है, फिर भी वह विवाह कर लेती है. एक पुत्र उत्पन्न होता है. विमोहित होकर पति को वह छोड़ देती है. स्वयं ही पीड़ित होती है. उसकी पीड़ा को संवेदनशील भाषा और 'वर्षा' तथा 'ओले' के प्रतीकों से कहानी लेखिका ने अंत में जाकर हृदयस्पर्शी बना दिया है. चित्रा मुद्गल की कहानी 'लिफाफा' में युवकों की बेकारी, बेकारी के कारण कुंठाजन्य व्यापक प्रभाव का चित्रण किया है. यह कुंठा युवकों को, गहरे तक बींधकर, उनके पुंसत्व तक को आघात पहुंचाती है. जवान बहन को नौकरी मिल गई. भाई को नहीं. मां-बाप का व्यवहार भी, अपने प्रति, बदला हुआ पाकर वह भीतर-भीतर टूटता-बिखरता है. उसकी प्रेमिका-मित्र रेखा ही उसे इस स्थिति से उबारती है, पुरुष माडल का काम दिलाकर, क्योंकि रेखा जानती है कि मानसिक द्वंद्व का बहुत गलत असर पड़ता है. . . देश की व्यापक समस्या को गहन मनोवैज्ञानिक आधार पर रूपायित किया गया है. सुदीप की 'लंगड़े' में एक ही बूढ़ा लंगड़ा व्यक्ति है जो अपने सहयोगी की युवती बेटी 'डांबली' को पालता है, उसके मां-बाप के मर जाने पर. फिर वे दोनों पति-पत्नी की तरह रहते हैं, झोंपड़पट्टी में. दैहिक रूप में अतृप्त डांबली अन्य झोंपड़पट्टी के युवक रंगय्या के साथ चली जाती है. वह उससे पेशा कराना चाहता है, किंतु डांबली उसकी हत्या कर देती है. समाज में छोटे-से-छोटे समझे जानेवाले व्यक्ति में वह नैतिक भावना अभी शेष है, जो झोंपड़पट्टी में आकर भाषण देने वाले नेता तक में नहीं. नैतिकता के इस आयाम का उद्घाटन कर सुदीप ने यह स्थापित किया है कि एक तो लंगड़ा वह था, जिसकी टांग कटी हुई थी, दूसरे वे व्यक्ति भी लंगड़े हैं, जिनमें नैतिक जीवन जीने का बल नहीं है. अन्य कहानियां मामूली हैं, जिनमें कुछ भी नया या नये ढंग से नहीं कहा गया. □

● कहानी और कहानी (कहानी संकलन): सं. डॉ. राजेंद्रकुमार शर्मा, सुरेश शर्मा; प्रकाशक: प्रभा प्रकाशन, इंदौर; पृ. सं. 160; मूल्य 20.00 रुपये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एंग्री यंग मैन' अमरीकी शब्दावली का वह शब्द है जहां युवक एक खास ऐयाशी से निकलकर सड़कों पर बेपरवाह घूमना शुरू करते हैं, बगैर किसी मकसद के. इन्हीं युवकों के लिए इस शब्द की ईजाद हुई. लेकिन भारतीय परिवेश में यह शब्द बखान के रूप में प्रचलित होने लगा है. एक समझदार पत्रकार एम. के. रैना (प्रयोग) के लिए इसी शब्द का प्रयोग उस संदर्भ में करता है तो बात अखरने लगती है क्योंकि 'प्रयोग' और एम. के. रैना ने २८-२९ मई, ८४ को जिस ग्रीष्म उत्सव का आयोजन किया था वह एक लक्ष्य को लेकर था, दिशाहीन नहीं. सूत्रधार उसी अवसर की रपट के साथ यहां प्रस्तुत है...

भरतमुनि के वंशधर

सूत्रधार

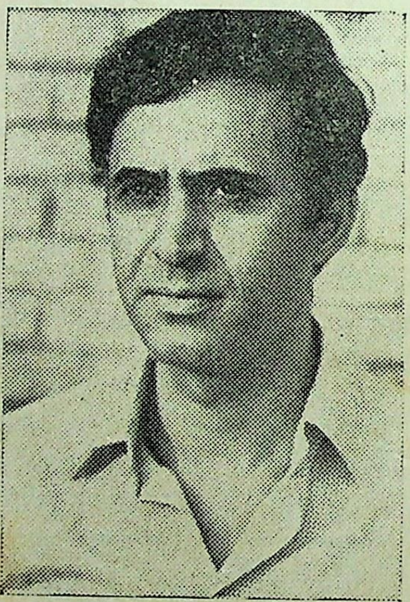

●एम. के. रैना

सामाजिक यथार्थ और रंगमंच की प्रतिबद्धता

दोनों जन एक ही बात करते
पड़ते हैं रघुवीर सहाय कहते
"सामाजिक यथार्थ
व्यक्ति की नजर से देखा जाना चा
जो समाज की आवश्यक आवयकता
की सहूलियत से काटकर अ
कर दिया गया है. लेकिन उसके अं
समता का बोध जिंदा है और वह अ
'स्व' को समाज में स्थापित करने
ललक रखता है. उसे इतनी छूट
होनी ही चाहिए कि वह अपने रच
कार को भरपूर ढंग से स्थापित
सकने की सुविधा पा सके. इसके
जरूरी है कि सत्ता और संपत्ति
विकेंद्रित स्वरूप समाज की बुनि
में डाला जाये. क्योंकि सत्ता
संपत्ति का दबाव व्यक्ति के अंदर
रचनाकार को मारता है. और
की हिफाजत के लिए उसे समझौ
वादी बना देता है." यही बात स
हाशमी अपने ढंग से कहते हैं, "
का एक बड़ा हिस्सा जलालत
जिल्लत की जिंदगी जी रहा है.
मजबूर है और मजलूम है, पानी
आवश्यक आवश्यकताओं से वंचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● भीष्म साहनी

ौर इसके लिए किल्लत उठा रहा है. ा इस सच्चाई से रंगमंच का कोई ीकार नहीं है!''

सामाजिक यथार्थ पर दोनों जन की च इकट्ठा हो जाती है लेकिन दान के सवाल पर रघुवीर सहाय ष्ट दिखाई पड़ते हैं, "सत्ता और त्ता का विकेंद्रित स्वरूप और व्यक्ति ा 'स्वराज' ही उस रचनाकार को माजिक यथार्थ से जोड़कर समता-लक समाज की रचना के लिए एक तार में खड़ा कर सकता है अन्यथा नाशाही का खतरा और बढ़ेगा या व्यक्ति गुलामी की तरफ झुक येगा. रंगमंच की दिशा के लिए दुनियादी सोच का विषय है.''

मदन गोपाल सिंह और सफदर शमी समतामूलक समाज की इच्छा तो क्त करते हैं लेकिन किस डगर से, स्पष्ट नहीं हो पाता. वे बार-बार ानिक विश्लेषण की बात उठाकर ाज-विज्ञान की आंतारिक विसंग-ों की चर्चा लाते हैं. चंचल रघुवीर के सहाय के समर्थन में सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण करते समय देश, काल और परिस्थिति के त्रिकोण पर चुक रही संगठित राजनीति की कमी को कोसते हैं और कहते हैं, "सत्ता का केंद्रीकरण, पूंजी का संचय और सामाजिक बिखराव रचना की हर विधा के लिए घातक है. चाहे रंगमंच हो या साहित्य. इन सब पर इस त्रिकोण का असर पड़ता है.''

बहस की शुरुआत यहां से होती है. और यह दो-तीन दिन तक चलती रहती है. प्रयोग द्वारा आयोजित यह विचार-गोष्ठी (28-29 मई, श्रीराम सेंटर का तलघर) गहमागहमी के बीच से निकलकर इस नतीजे पर पहुंच जाती है कि रंगमंच को सामाजिक यथार्थ से जुड़कर ही गुणात्मक और सार्थक नतीजे पर पहुंचना होगा. गोकि कुछ समझदार पत्रकारों ने इस बहस की सार्थकता पर टिप्पणी करते हुए इसे निरर्थक एवं निर्गुण कहा. लेकिन उन्होंने इस बात को यूं छोड़ दिया कि सामाजिक यथार्थ की स्वीकृति और उससे जुड़कर काम करना अपने आप में एक सार्थक कदम है.

इस बहस में सूत्रधार की भूमिका मात्र श्रोता की रही है और वह जो कुछ समझ सका है, 'सारिका-पाठकों' और रंगकर्मियों को जस-का-तस सुनाना चाहता है क्योंकि निर्णायक दौर में पाठक जिन्हें हम रंगमंच की भाषा में दर्शक मानकर चलते हैं, उनकी भूमिका ही ज्यादा कारगर ढंग से उभरेगी.

श्रीराम सेंटर के तलघर में कुल जमा . . .40 लोग बैठे हैं. इनमें प्रेक्षक, श्रोता, दर्शक, रंगकर्मी, पत्रकार, साहित्यकार और नाटककार शामिल हैं. विचार-गोष्ठी के आयोजक 'प्रयोग'...एम. के. रैना, वेद धींगड़ा, तथा उनके सहयोगी इस जहमत (लोगों को इकट्ठा करने से लेकर भोजन व्यवस्था तक) से अभी भी उभर नहीं पाये हैं. फिर भी एक जुनून और उत्साह के साथ भागीदारों का खयाल रखते चल रहे हैं. गोष्ठी में एक अंतरंगता है. वक्ता और श्रोता

● रघुवीर सहाय

के बीच बहुत कम फासला है. (मंच-व्यवस्था और संवाद की स्थितियों के साथ) बहस की शुरुआत होती है— 'देश का मौजूदा सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ और रंगमंच.'

रघुवीर सहाय शुरुआत करते हैं. बातचीत सामाजिक विश्लेषण, उसके बिखराव और विसंगतियों से होते हुए स्थापित संस्थान की जड़ मान्यताओं तक पहुंचती है. सामाजिक विसंगतियों की चर्चा में रघुवीर सहाय गैरबराबरी का हवाला देते हैं और तकनीकी नकल की प्रवृत्ति को घातक बताते हैं. संस्कृति की सत्ता और सत्ता की संस्कृति के आपसी रिश्तों में जो समझौता होता है उससे उपजनेवाले खतरे पर हिंदुस्तानी रंगमंच कहां खड़ा होगा, या है? इस पर रघुवीर सहाय की सोच स्पष्ट हो जाती है. सत्ता की दखलंदाजी (परोक्ष और प्रत्यक्ष) कई सिरे से मुंडेर पर चढ़ती है और यही खतरा संस्कृति के 'मूल विकास' में घातक है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्ता और संपत्ति से विकेंद्रित समाज में ही रंगमंच जैसे सशक्त माध्यम को पनपने का मौका मिल सकता है. . .

▣ चंचल

यह बहस अभी उठी ही थी कि सफदर हाशमी आम जन की परेशानी, उसकी मजबूरी और किल्लत के सवाल पर रंगमंच को सामने खड़ा कर देते हैं. और कहते हैं कि अब जरूरत है वैज्ञानिक विश्लेषण की. जिसमें यह तय हो सके कि आदमी का किस वर्ग से रिश्ता बने जो समाज में गैरबराबरी की खायी पाटने में मददगार साबित हो. एक तरफ जहां पदार्थ पूरे समाज की चेतना, उसकी संस्कृति और जीवन पद्धति को प्रभावित कर रहा है, उसका विश्लेषण जरूरी है और अगर हम उस बिंदु पर खड़े होकर ईमानदार बहस चलाएं और नतीजे पर पहुंचें तो यह स्थिति स्पष्ट हो जायेगी कि सामाजिक यथार्थ आज शोषक और शोषित के बीच स्पष्ट रूप से विभक्त हो चुका है. उसमें एक तरफ जहां ऐयाशी, कुनबापरस्ती, और फिरकापरस्ती है तो दूसरी तरफ गरीबी, गैरबराबरी, भुखमरी और तबाही है. जाहिर है कि रंगमंच को इसमें शोषित जन के साथ मिलकर एक निश्चित दिशा में चलने का फैसला लेना होता है.

वैज्ञानिक विश्लेषण की बात अभी स्पष्ट भी नहीं हो पायी थी कि रंगमंच-समीक्षक रमेशचंद्र ने अपनी बात को किस्सागोई से जोड़ना शुरू कर दिया और कहा कि (कथित वामपंथी फिल्मों का हवाला देते हुए) स्क्रीन को लाल कर देने या बच्चे के प्रतीक में पत्थर फिंकवा देने से न तो समस्या का समाधान निकलता है और न ही उस के सोच की दिशा तय हो पाती है. इस दिशा में रंगमंच-समीक्षक, समालोचक और साहित्यकार असरदार भूमिका निभा सकते हैं.

यहां तक आते-आते बहस बहुत हद तक निजी अनुभवों पर ठहरती जान पड़ रही थी कि अचानक चंचल के नाम की पुकार हुई और बहस में गहमा-गहमी का दौर शुरू हो गया.

मंच पर आते ही चंचल ने 'प्रयोग' को बधाई दी और रघुवीर सहाय के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विश्लेषण का समर्थन करते हुए कहा, "रंगमंच संक्रमण के उस दौर से गुजर रहा है जहां शुद्ध व्यापारिक रिश्ते पर हिंदुस्तानी रंगमंच बिकने के लिए मंडी में खड़ा है. आयात और निर्यात की इस संस्कृति को स्थापित संस्थान बल दे रहे हैं. इसमें आर्थिक बिखराव, राजनीतिक तानाशाही की प्रवृत्ति और सामाजिक टूटन है. सत्ता के साथ तमाम प्रतिपक्षी दल जिस अनुपात में सिकुड़कर केंद्रित हो रहे हैं और पूंजी कुछ घरानों तक महदूद हो रही है उससे व्यक्ति की निजी औकात घट रही है और वह परावलंबी हो रहा है. रंगमंच का विकास न केवल अवरुद्ध हो रहा है बल्कि खतरा पैदा कर रहा है. और इसमें कमोबेश हमारे समीक्षक और समालोचक और भी कम गलत भूमिका नहीं अदा कर रहे हैं.

चंचल की यह बात कुछ सम बंधुओं को नाराज करती दि पड़ी और बहस का हिस्सा गरम गया. लेकिन श्रोताओं की तरफ एक-एक करके जो उदाहरण गये वे चंचल के तर्क को पुख्ता करने लिए काफी थे. उदाहरण देने व ने यहां तक कह डाला कि वहां ऐसी भी समीक्षाएं छपी हैं जो ना हुए ही नहीं. बहरहाल, इस स बहस को समेटने के लिए कथा भीष्म साहनी खड़े हुए और उ सामाजिक यथार्थ से लेकर मौ परिस्थितियों तक का विश्लेषण कि नाटककार, रंगकर्मी, दर्शक और स क्षक की आपसी साझेदारी व उ रागात्मक लगाव का हवाला दिया.

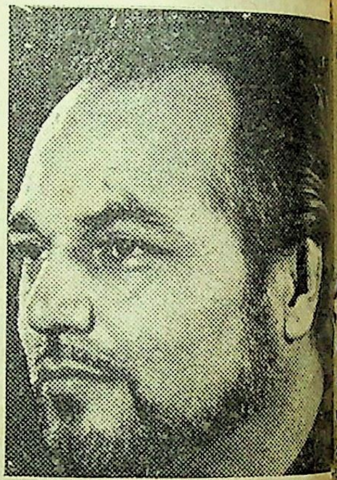

कठिनाइयां कई हैं लेकिन यह कहां नहीं हैं, फिर भी इसी में से डगर बनानी है. सोच साफ होगी तो सामाजिक सच्चाई की पकड़ अपने आप मजबूत होगी. रंगमंच अब इस दिशा में काम कर रहा है. . .

▣ मनोहर सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरी बहस इस पर निर्णय पर पहुंची कि रंगमंच की जड़ें जिस गहराई तक सामाजिक यथार्थ के करीब होंगी रंगमंच की सार्थकता उतनी ही गुणात्मक होगी.

नाटककार हिंदी रंगमंच पर लिखने से कतराते हैं, अधिकांश रंगकर्मियों की इस शिकायत का जवाब देते हुए रमेश बक्षी ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों का हवाला दिया और उन्होंने आरोपित किया कि हमारे रंगकर्मी परदेसमुखी होने में अपने को गौरवान्वित महसूस करते हैं अन्यथा हिंदी की कहानियां, उपन्यास और नाटक नाकाफी नहीं हैं. यदि विदेशी रचनाओं का नाट्य-रूपांतर हो सकता है तो देशी रचनाओं का क्यों नहीं! आज जरूरत इस बात की है कि इस विधा में लगे तमाम लोग एक साथ बैठें और एक-दूसरे की मदद के लिहाज से अपने अहम को त्यागें और कुछ करें.

इसके बाद गोष्ठी भोजन के लिए विसर्जित हो गयी.

बहस रंगमंच की मूल समस्या से रंगमंच के दिशा निर्धारण वाया पारंपरिक रूपाकारों तक पहुंची लेकिन विषयांतर इतने रहे कि लोग बीच-बीच में टोका-टाकी करते रहे. मदन गोपाल सिंह का आलेख जो पारंपरिक रूपाकारों पर था, बहस को गंभीर मोड़ तक पहुंचाने में सफल रहा लेकिन बीच-बीच में यह लगता रहा कि बहस मूल विषय से हटकर सामाजिक परिस्थितियों के विश्लेषण पर जा रही है.

लेकिन सब मिलाकर यह आलेख अपने में एक तर्क उठाता है. सहमत होना या न होना जरूरी नहीं है. अनुराधा कपूर, डॉ. सिद्धू, उत्तरा ावकर, रामगोपाल बजाज, दीपा साही, मनोहर सिंह, एम. के. रैना, देवेंद्र अंकुर सभी लोग या तो व्यक्तिगत रूप से या फिर सार्वजनिक रूप से कुछ न कुछ 'ठोस' की तरफ सोचते और बोलते रहे. सूत्रधार बटोरता रहा... □

अगले अंक में मुद्राराक्षस से बातचीत

ग्रीष्म उत्सव में भाग लेने वाले अन्य वक्ताओं के विशिष्ट विचार

लोक शैली, लोक जीवन से जुड़ी है. लोक जीवन में ज्यों-ज्यों बदलाव आयेगा शैली में भी बदलाव की संभावनाएं बढ़ने लगेंगी. इसे रोकना फिजूल है.

▣ उत्तरा वावकर

हम, यानी रचना की किसी भी विधा के लोग, जब तक सामाजिक यथार्थ से नहीं जुड़ेंगे, रचना के साथ बेमानी करते रहेंगे चाहे वह रंगमंच हो या साहित्य, कला हो या संगीत.

▣ दीपा साही

समाज का वैज्ञानिक विश्लेषण करना जरूरी जरूरियात है. इससे अलहदा होना समाज की सच्चाई से भागना है, रंगमंच को इसके बारे म गंभीरता से सोचना चाहिए.

▣ सफदर हाशमी

मौका और कूवत, हुनर की अभिव्यक्ति के लिए दो जरूरी तर्क हैं. और इनके लिए जरूरी है कि समाज को समता मूलक दृष्टि मिले.

▣ रामगोपाल बजाज

मैं यह नहीं कहता कि रंगमंच आंतरिक कलह का शिकार है लेकिन हमें रचनात्मक आलोचनाओं को ही तरजीह देनी चाहिए.

▣ भारत रत्न भार्गव

इस तकनीकी आपाधापी में हम शार्टकट के अभ्यस्त होते जा रहे हैं. जुगुप्सा पैदा करके दर्शक को एक अति पर ले जाना फिर कट करके दूसरी तरफ पहुंचा देना, यही हो रहा है. माहौलिया यथार्थ (रंगमंच में) अब लोगों को उबाऊ लगने लगा है और अखरता है.

▣ एम. के. रैना

जब तक रंगमंच वर्गीय सोच और इस सोच की बिना पर अपनी स्वस्थ राय नहीं बना लेता तब तक नहीं कहा जा सकता कि रंगमंच कहां जायेगा.

▣ मदन सिंह

मेरा व्यक्तिगत अनुभव है कि इस मुल्क में रंगमंच नंबर दो का ही धंधा बनाकर रंगकर्मी द्वारा अपनाया जा सकता है, मात्र रंगमंच में जुड़े रहने का अर्थ होगा भूखों मरना और अगली पीढ़ी को भी बर्बाद करना.

▣ डॉ. सिद्धू

रंगमच एक मायने में वैचारिक कुपोषण का शिकार हो चुका है. रंगमंच करने के साथ-साथ वैचारिक बहस भी होनी चाहिए. इससे रंगमंच का ध्येय बनने में सहूलियत होगी.

▣ वेद धींगड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलचल

मूर्तिदेवी-साहित्य पुरस्कार

भारत के सर्वमान्य सर्वोच्च साहित्य पुरस्कार के रूप में विख्यात 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से भिन्न एक और पुरस्कार 'मूर्तिदेवी-साहित्य पुरस्कार' की स्थापना भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से की गयी है. ज्ञानपीठ के संस्थापक स्वर्गीय साहू श्री शांतिप्रसाद जैन तथा वर्तमान अध्यक्ष साहू श्री श्रेयांसप्रसाद जैन की मातुश्री स्वर्गीया श्रीमती मूर्तिदेवीजी भारतीय संस्कृति के आदर्शों एवं शाश्वत मूल्यों की आजीवन पोषक रहीं. भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना उन्हीं की प्रेरणा का परिणाम है. इन्हीं मातुश्री के नाम पर ग्यारह हजार रुपये का यह पुरस्कार शुरू किया गया है. इस पुरस्कार का उद्देश्य ऐसी साहित्यिक संरचनाओं को प्रोत्साहन देना है, जिसमें भारतीय जीवन मूल्यों का उन्नयन हो. पुरस्कार-वर्ष से कम से कम एक वर्ष पूर्व प्रकाशित किसी भी कृति को यह पुरस्कार मिल सकता है.

पहला 'मूर्तिदेवी-साहित्य पुरस्कार' कन्नड़ के मूर्धन्य साहित्यकार श्री सी. के. नागराज राव की कृति 'पट्ट महादेवी शांतला' को दिया गया है, जिसे इससे पूर्व साहित्य अकादमी (कर्नाटक राज्य) भी पुरस्कृत कर चुकी है.

कर्नाटक राज्य के चित्रदुर्ग जनपद के चल्लकेरे ग्राम में 12 जून, 1915 में जन्मे श्री के. सी. नागराज राव की आरंभिक शिक्षा विज्ञान में होने के कारण उन्हें आजीविका की दृष्टि से इंजीनियर होना चाहिए था, किंतु कन्नड़ साहित्य और इतिहास के अध्ययन-मनन ने उनके जीवन की जैसे दिशा ही बदल दी. आज वे कन्नड़ के विख्यात रचनाकार हैं. स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय हिस्सेदार, कर्नाटक

● सी. के. नागराज राव

रंगमंच के अभिनेता, फिल्म पटकथा लेखक, निर्देशक तथा आदर्श फिल्म इंस्टीट्यूट बैंग्लौर के उप-प्राचार्य इत्यादि के रूप में काम कर चुके इस लेखक की उपन्यास, कहानी और नाटक आदि विधाओं की लगभग दो दर्जन किताबें छप चुकी हैं.

सी. के. नागराज राव का यह पुरस्कृत उपन्यास—'पट्ट महादेवी शांतला' ग्यारहवीं-बारहवीं शता[ब्दी] के कर्नाटक के प्रसिद्ध होयसल [वंश] के शासक महाराज विष्णुवर्द्धन [की] पट्टरानी शांतला को केंद्र में रख[कर] लिखा गया है, जो दो हजार एक [सौ] चालीस पृष्ठों में समाहित है. इ[समें] होयसल वंश के तीन पीढ़ियों के उता[र-]चढ़ाव और राजनीतिक घटना[ओं] का विस्तार से निरूपण किया गया [है.] इस उपन्यास की नायिका शांत[ला] राजघराने की सेवा में उच्च पदा[सीन] एक साधारण हेगड़े परिवार की [थी.] है. राजघराने के निकट के वाताव[रण] में लालन-पालन होने से अप[नी] किशोरावस्था तक पहुंचने से पूर्व [ही] उसने न केवल साहित्य, संगीत, नृ[त्य] और कला में निपुणता प्राप्त कर ली, बल्कि वह शास्त्रकला में भी पारंग[त] हो गयी. प्रकृति के वरदान के रूप [में] शारीरिक सौंदर्य तो उसे मिला [ही] था. . . इन्हीं गुणों के कारण [वह] राज-परिवार के उत्तराधिका[री] विष्णुवर्द्धन की पट्टरानी बन ग[यी.] वहां उसने उस परिवार के ती[न] पीढ़ी के जीवन को देखा, जाना [और] समझा. . .जिसकी कथा विस्तार से [इस] उपन्यास में कही गयी है.

एक दुखद हादसा

लंबे समय से यह चला आ रहा है कि तमाम लघुपत्रिकाएं पूरे उत्साह के सा[थ] सामने आती हैं और धीरे-धीरे अंधेरे में खो जाती हैं. खो जाने की यह अव[धि] भी दो-चार या पांच साल के भीतर ही रहती है. . .पर अब पिछले सोल[ह] वर्षों से प्रकाशित होती चली आ रही साहित्यिक पत्रिका 'मुक्तकंठ' (संपादक शंकरदयाल सिंह) भी उसी फेहरिश्त में गिनी जायेगी. पिछले कुछ वर्षों में जि[न] पत्रिकाओं के प्रकाशन के स्थगित या बंद हो जाने का दुख सालता रहा है उन्हीं [में] एक नाम और जुड़ गया है. . . यानी 'सर्वनाम', 'युगपरिबोध', 'कथन', 'कथादे[श]' 'मासिकी', 'साहित्य निर्झर', समग्र' 'बेहतर', 'मतांतर', 'कहानी', 'पश्यंती' औ[र] 'समकालीन तीसरी दुनिया' आदि के बाद एक और दुखद हादसा. . .मुक्तकं[ठ]

संभवतः यह पहला अवसर है जब किसी लघु पत्रिका के समापन की विधि[वत्] घोषणा करते हुए समापन अंक प्रकाशित किया गया है. संपादकीय में शंकरदया[ल] सिंह द्वारा उठाए गये सवाल अपनी जगह वाजिब कहे जा सकते [हैं] . . .और इसका जवाब फौरी तौर पर नहीं, लेखन और संपादन की गंभी[रता] को देखते हुए ही दिया जा सकता है. . . क्योंकि तमाम लखुपत्रिकाएं समय-स[मय] पर महत्वपूर्ण भूमिकाएं भी निभाती रही हैं.

बहरहाल 'मुक्तकंठ' का यह समापन अंक अपने आप में महत्वपूर्ण है. वसंत [के] एक स्पर्श (अज्ञेय), हिंदी का भविष्य (कामिल बुल्के), स्व. फणीश्वर नाथ रे[णु] (स्व. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना), मोदीआइन (बी. पी. कोइराला) जैसी साम[ग्री] किसी भी पत्रिका को स्मरणीय बनाने की सामर्थ्य रखती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

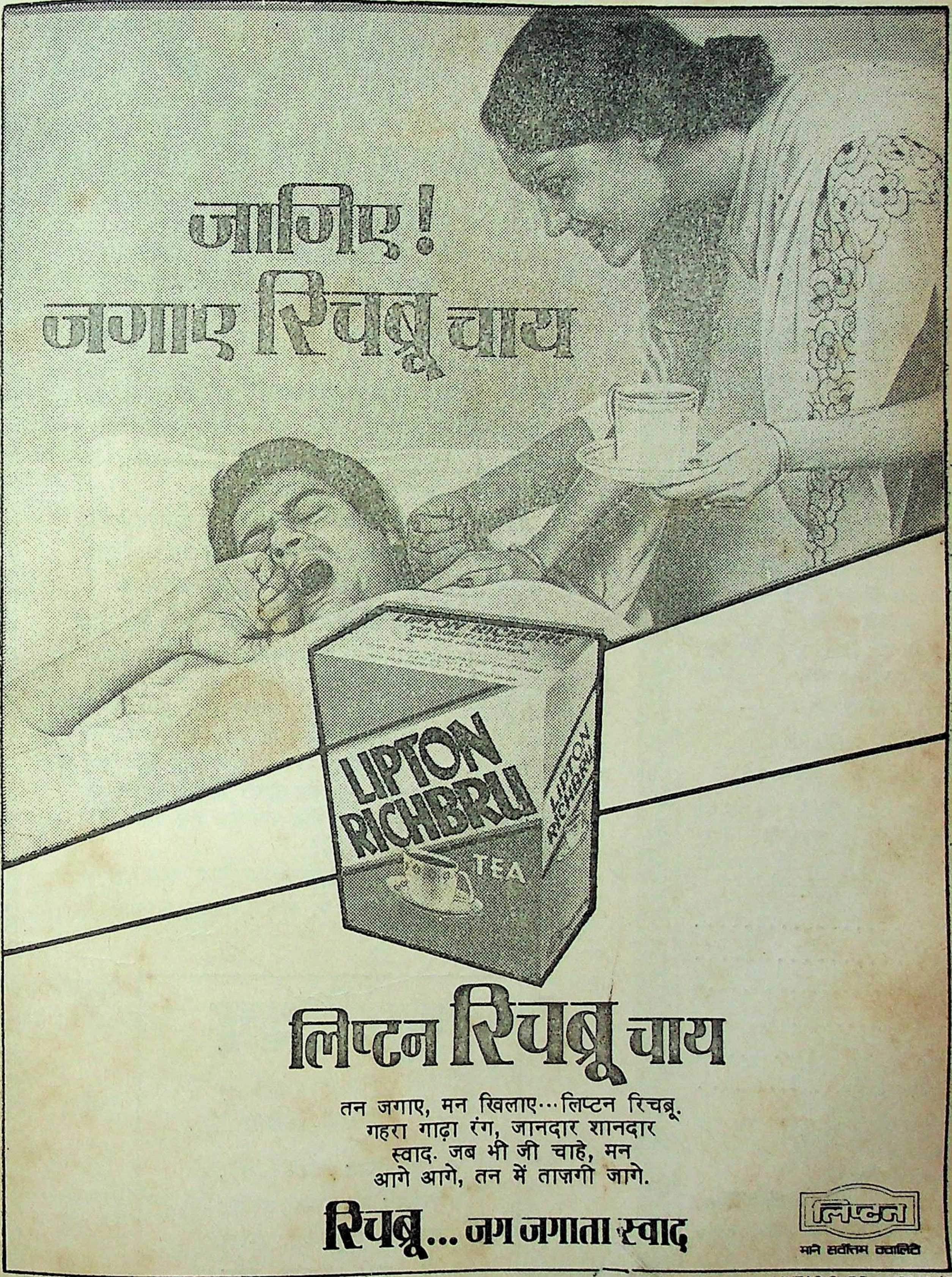

LINTAS(C)/RB/11/2015 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar